CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

दिसम्बर १९६५

५० पैसे

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ४६ : अंक १२ : मार्गशीर्ष २०२२

प्रधानसंपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री तर्कशिरोमणि

विषयानुक्रमणिका

१	दुष्टको हम युद्धमें जीतें	[वैदिक प्रार्थना]	३४३
२	श्रीमद्भागवतमें भविष्यवाणी	श्री जगन्नाथ शास्त्री	३४४
३	सामरिकी हिंसा अहिंसा ही है	कवि— श्री ब्र. योगेन्द्रार्य्य दर्शनाचार्य	३४७
४	वेदान्तकी साधना	श्री गङ्गाप्रभु गर्ग अग्रवाल	३४९
५	मठा और आरोग्यता	श्री ग. पां. परांजपे वैद्य	३५१
६	भगवान् कहीं दूर नहीं, आपके पास ही तो हैं	श्री शिवनारायण सक्सेना	३५४
७	कण-संचय	श्री भास्करानन्द शास्त्री	३५७
८	बाह्य तथा आंतरिक सत्ताका अवलोकन	श्री माताजी	३५९
९	अग्नि-देवता	पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	२२५ से २४०

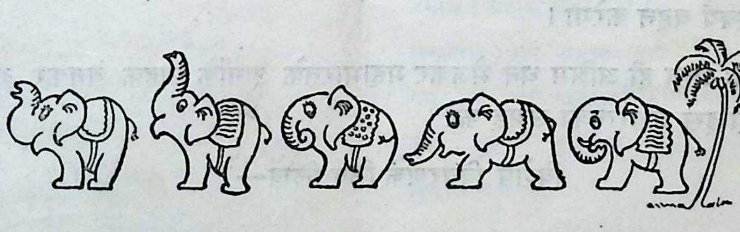

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६१, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवश्य पढ़ें] [अवश्य खरीदें

म हा भा र त

(संस्कृत श्लोक और हिन्दी अनुवादसहित)

प्रधान सम्पादक
म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर

समस्त भारतीयसंस्कृतिके प्रेमियोंको सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि महाभारत (सटीक) का नवीन संस्करण बहुत शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है। जो १८ भागोंमें सम्पूर्ण होगा।

(१) इन १८ भागोंको पृथक् पृथक् खरीदनेवालोंको महाभारतका पूरा सेट ३६०) रु. मिलेगा। इस पर पुस्तक विक्रेताओं तथा अन्य शिक्षण संस्थाओंको १२½% कमीशन दिया जायगा। डाकव्यय और रेल्वे भाडा सब ग्राहकका होगा।

(२) महाभारतका पूरा सेट एक साथ खरीदनेवालेको पूरा सेट ३२०) रु. में मिल सकेगा। पुस्तक विक्रेताओं और शिक्षण संस्थाओंको इस पर २०% कमशिन दिया जाएगा तथा डाकव्यय और रेल्वे भाडा सब ग्राहकको देना होगा।

(३) जो महाभारतके पूरे सेटका अग्रिम मूल्य (Advance) भेजेंगे उन्हें यह पूरा सेट २५०) रु. में मिलेगा तथा डाकव्यय और रेल्वे भाडा ग्राहकसे न लेकर मण्डल स्वयं वहन करेगा।

अतः आज ही अग्रिम धन भेजकर महाभारतके भागोंके ग्राहक बनकर अल्पमूल्यमें ही इस ग्रंथरत्नका संग्रह करें।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—
' महाभारत प्रकाशन विभाग '
पो.– स्वाध्याय मण्डल, पारडी
[जि. बलसाड] (गुजरात राज्य)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

दुष्टको हम युद्धमें जीतें

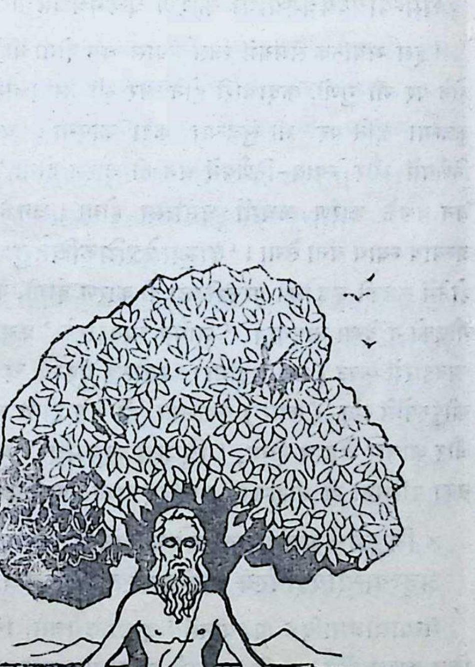

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति
वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥

(ऋ० ७।८२।१)

हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो! (युवं) तुम दोनों (अध्वराय) हिंसारहित कर्म करनेके लिए तथा (विशे जनाय) प्रत्येक मनुष्यका हित करनेके लिए (नः महि शर्म यच्छतम्) हमें महान् सुख दो, (यः दीर्घप्रयज्युं अति वनुष्यति) जो विस्तारसे उपासना करनेवालेको कष्ट देता है, उस (दूढ्यः) दुर्बुद्धिको (वयं) हम (पृतनासु जयेम) युद्धोंमें जीतें।

जो हिंसारहित कर्म और मनुष्योंका उपकार करते हैं, उन्हें महान् सुख प्राप्त होता है। ऐसे उत्तम परहितके कर्मोंमें जो विघ्न उपस्थित करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। इसलिए सत्कर्मोंको हमेशा प्रोत्साहन देना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीमद्भागवतमें भविष्यवाणी

लेखक— श्री जगन्नाथ शास्त्री, झज्जर [जि. रोहतक]

प्रिय पाठक गण ! आप संसारकी प्रगतिको देखते हुए पूर्णतया अनुभव करते हैं और कष्टमयी जीवनयात्राको चला रहे हैं। जिस जिस देशके समाचार पत्रको पढते हैं वहीं वहीं दुर्भिक्ष और अशान्ति ही प्रतीत होती है। अतः मैंने महर्षियोंकी बताई हुई भविष्यवाणी पर कुछ विचार और उल्लेख लिखनेके लिये साहस किया है। आशा है, पाठक महोदय लेखाऽनुसार संसार पर दृष्टि डालेंगे। आए हुए इस भयंकर समयका मूलबीज वेदोंमें मिलता है—

पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।

(ऋ. १०।१०।१२; अथ. १८।१।१४)

अपनी बहिनके साथ भोग करना पाप कहा गया है। परन्तु आधुनिक समय पर दृष्टि डालते हैं, बहुत स्थानोंमें व्यभिचारी मनुष्य दूसरोंकी स्त्रीको प्रत्यक्ष रूपमें बहिन बहिन पुकारते हैं, और व्यभिचारिणी स्त्री भी व्यभिचारी पुरुषको प्रत्यक्ष रूपमें भाई बुलाती है, परन्तु वस्तुतः यह दोनों ही आपसमें पति-पत्नीवाला संबंध रखते हैं। यही व्यवहार देशका नाशक हो जाता है। तथा—

आ घा ता गच्छनुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि। (ऋ. १०।१०।१०; अथ. १८।१।११)

श्री जयदेव विद्यालंकार अपने अथर्वभाष्यमें- (ता) वै (उत्तरा) इससे आगे आनेवाले (युगानि) पति-पत्नियों और वर-वधुओंके जोडे (घ) भी निश्चयसे (आगच्छान्) आने सम्भव हैं। इस अर्थसे यही ज्ञात होता है। वेदमें भविष्य कथन 'आने सम्भव हैं' स्पष्ट प्रतीत होता है। (यत्र) जिस आनेवाले समयमें बहनें बहनपन होते हुए भी अबहिनें बनेंगी। अर्थात् ऐसा समय भी आगे आएगा, जब बहिनें भाईके साथ विवाहित होंगी। इस समय चाचीके लडकेके साथ विवाह इस्लामधर्ममें प्रचलित है। हिन्दुधर्मी भी बुआ मौसीकी कन्याके साथ विवाह कर रहे हैं, धार्मिक बंधन नहीं रहा। (श्रीमद्भाग. १२।२।१) में—

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया।
कालेन बलिना राजन् नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः॥

प्रतिदिन आगे आगे धर्म, सत्य शौचादि तथा आयु, बल और स्मृति क्षीण होती जाएगी।

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि॥

'इस भयानक समयमें जिसके पास धन होगा वह निर्गुण होने पर भी गुणी, कदाचारी होने पर भी सदाचारी, और कुजन्मा होने पर भी सुजन्मा कहा जाएगा। धर्माधर्मनिर्णयमें और न्याय-निर्णयमें धन ही कारण होगा' अर्थात् धन बलके कारण अधर्मी धर्मात्मा होगा। धनके बलसे अन्याय न्याय बना लेगा। 'दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुः' दंपती होनेमें लडकी लडकेकी परस्परेच्छा ही कारण होगी, कुल और गोत्रको न देखा जाएगा। 'मायैव व्यवहारके' क्रयविक्रयके व्यवहारमें कपट (छल) होगा। 'स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च रतिः' स्त्रीपुरुषोंमें रति (काम) कुशलता ही श्रेष्ठ होगी और कुल और आचार श्रेष्ठ न होगा, 'विप्रत्वे सूत्रमेव' यज्ञोपवीतका पहिनना ही ब्राह्मणपन या विद्वत्ताका चिन्ह होगा।

× लिङ्गमेवाश्रमख्यातान्योन्यापत्तिकारणम्।
अवृत्त्यान्यायदौर्वल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः॥

संन्यासाश्रमादिके पहचानमें 'दण्डा मृगचर्म, चिमटादि चिह्न कारण होंगे, न कि ब्रह्मचर्य संन्यासाश्रमादिका आचार और यही बात सब ही आश्रमोंकी आपत्तिका कारण होगी। मैं बडा हूं मैं बडा हूं इसी बात पर लाठी चल जाएगी।

× यह सब श्लोक श्रीमद्भागवत १२स्कं. १ अध्या. श्लोकों १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५ तथा स्कं. १२ अध्या. ३ श्लोकों २५,३०,३१,३२,३३,३४,३५,३६,३७,३८,३९,४०,४१,४२,४७ का अनुवादमात्र लिखा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुवर्ण मुद्रादिके अभाव, अर्थात् वकील या न्यायकर्ताको रिश्वत न देनेसे मुकदमेमें पराजय होगी। बहुत ऊंचा और जोरसे बोलना अर्थात् वाचाल बनकर रहना ही पाण्डित्य होगा।

अनाढ्यतैवाऽसाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम्॥

निर्धन होनेपर सदाचारी और सत्कुलीन भी (बुरा) माना जाएगा। और दंभी साधु सज्जन समझा जायगा। नरनारीकी परस्पर स्वीकृति अर्थात् सिविल मेरेज (प्रेम विवाह) होगा। केवल साबुन मलमल कर स्नान करना मुक्तिका साधन माना जाएगा, न कि संध्योपासनादि कर्म।

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम्।
उदरंभरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि॥

गृहसे दूर जलाशयको तीर्थ मानना, सिरके बालोंको कंघासे संवारना ही सुन्दरता मानी जाएगी, अपना पेट भरनेके लिये उद्यम होगा, न कि किसी दूसरेको अन्न देनेके लिये, जिद्द अथवा डिठाई सत्य होगी, 'दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम्' अपने परिवारकी पालना करना मात्र ही उद्यम और चतुराई समझी जाएगी। धर्मका सेवन करना अपनी कीर्तिके लिये होगा। लोग कहेंगे कि यह बडा धर्मात्मा है।

'ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो वली भविता नृपः।
प्रजा हि लुब्धैः राजन्यैर्निघृणैर्दस्युधर्मभिः
यास्यन्ति गिरिकाननम्।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंमेंसे जो बली अर्थात् अधिक परची (वोट) वाला होगा, वह राजा होगा। निर्दयी, कराधिक करनेमें लालची, परधन हरनेमें निपुण राजासे प्रजा भयभीत होकर पहाडों या वनोंमें आश्रय लेगें। अन्नादिखाद्य पदार्थों के न होनेसे दुर्भिक्षसे पीडित होकर, शाक, मूल, मांस, मद्य, फल, पुष्प, बीज खाकर जीवन गुजारेगें और शीत, वायु, धूपकी गर्मीसे तथा भूख, रोग, मानसिक संताप और अनेक प्रकारकी चिन्ताओंसे पीडित होकर प्रजा मर जाएगी। आयुका माध्यम २०–३० वर्ष होगा। इसके आगे यों लिखा है। सबके देह क्षीण होते जाएँगे, वर्णाश्रमधर्म प्रायः लुप्त हो जाएगा, वेद केवल कहनेमें होगा आचरणमें न होगा। धर्ममें पाखंडकी प्रचुरता, राजा चोरतुल्य धनके हरनेमें निपुण होंगे। मनुष्योंमें चोरी, असत्यभाषण, मारकाटसें अधिकता, सब वर्ण शूद्रप्रायः होंगे, गौएं सेवा और रक्षा न होनेसे बकरीके समान थोडे दुग्धवाली, संन्यासाश्रम गृहस्थाश्रमकी तरह और औषधियोंमें रससत्ता अल्प हो जाएगी। वृक्ष प्रायः कांटेदार होंगे, फलवाले अल्प होंगे। बादलोंमें बिजली अधिक और वर्षा अल्प होगी। निवासघर प्रायः शून्यवत् प्रतीत होंगे। 'शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः' शूद्रकैवर्तादि हरिजनोंकी प्रधानता होगी।

ऐसे भयंकर समयमें कपटी (पालिसीवाले) झूठे, आलसी, नींदमें मस्त अर्थात् धर्मके काममें सोजानेवाले, परहिंसक परपीडक आप दुःखी, दूसरोंको दुःख देनेवाले, शोक, मोह, भय, दीनतासे ग्रस्त, अल्प भाग्यवाले मंदबुद्धि बहुत पेटू, वास्तवमें निर्धन और दिखानेमें धनी होंगे। 'स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसती' स्त्रियें प्रायः पातिव्रत्यहीन जारवाली अर्थात् व्यभिचारिणी होंगी। देशोंमें चोरी डाका अधिक होगा। पाखंडी भिन्नमतवाले वेदोंका खंडन करेंगे, राजा प्रजाको दुःख देनेवाले होंगे अर्थात् प्रजा पर अधिक कर लगानेसे प्रजाका साहस नष्ट कर देंगे। ब्राह्मण उदरंभरी और कामी होंगे। ब्रह्मचारी कदाचारी होंगे। और गृहस्थाश्रमी भिक्षा मांगनेमें तत्पर रहेंगे। वानप्रस्थाश्रमी जन ग्रामवासी होंगे।

संन्यासी योगी धनके लालची होंगे और भिखियारी (वस्त्रमात्र संन्यासाश्रमी) बाल बच्चोंवाले अर्थात् कुटुम्बी होंगे। स्त्रियें लघुदेहवाली, बहुतभोजन करनेवाली, अधिक सन्ततिवाली और निर्लज्ज, कठोर बोलनेवाली चोरी कपट और जल्दी काम करनेवाली अर्थात् बेहौसलावाली होंगी। क्षुद्रलोग अर्थात् हरिजन शूद्रलोग क्रयविक्रयके व्यवहार करनेवाले होंगे। दूकानदार असत्य बोलकर दूकानदारी करेंगे। सब लोग आपत्ति न होनेपर निन्दितव्यवहार निन्दित कार्यको अच्छा काम मानेंगे। स्वामी रोगीभृत्यको त्याग देंगे। धनी गौओंकी सेवा न करेंगे उसे वनमें छोड देंगे, स्त्रीप्रमाणी अर्थात् स्त्रीलम्पट मनुष्य अपनी स्त्रीके कहने पर अपने पिता माता मित्र और संबंधियोंको छोडकर साली और श्यालोंके साथ गुप्त विचार करेंगे। शूद्र तपस्वी वेषसे दान लेंगे। वस्तुतः धर्मको न जाननेवाले व्यासगद्दी अर्थात् उच्चासन पर बैठकर धर्मका व्याख्यान करेंगे। केवल चार पैसेके लालचमें आकर मनुष्य मित्रघात अवश्य करना अच्छा जानेंगे और मरने मारनेपर तैयार हो जायेंगे।

पुत्र वृद्ध मातापिताकी रक्षा न करेंगे। और पिता भी सदाचारी गुणीपुत्रोंकी रक्षा न करेगा। और विशेषकर भयानककालमें धनके लालचसे और प्राकृत पदार्थों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखनेसे परमात्माकी उपासना त्याग देंगे। परन्तु स्मरण रखें जैसे सोनेमें अग्निके प्रवेश होनेसे ताम्रादिके सम्बन्धसे युक्त सोनेकी दुर्वर्णताको निकाल कर शुद्ध सुवर्ण रह जाता है, ऐसे पापी मनुष्यके अन्दरके पाप भगवन्नाम और भगवदुपासनासे दूर हो जाते हैं और वह जीवात्मा शुद्ध होकर ब्रह्मस्वरूप होकर सारे संसारको ब्रह्ममय देखता है और वह रागद्वेषसे रहित होकर जीवन्मुक्त हो जाता है। तथा पद्मपुराण उत्तरखण्डमें लिखा है—

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः।
कामिन्यः केशशूलिन्या भविष्यन्ति कलौ युगे ॥

भयंकर कलिकालमें सब देशवासी लोग धन एकत्र करनेके लिये बचेंगे। पूर्वकालवत् वस्तुसे वस्तुका परिवर्तन त्याग देंगे। ब्राह्मण वेदविद्याको धन लेकर पढाएंगे, न कि निष्कारणरूपसे, स्त्रियें सिरके बालोंको सजाकर धनोपार्जन करनेवाली होंगी। शिवपुराणमें आया है— 'सत्य, त्रेता, द्वापरयुगमें ब्राह्मण जो कहते थे, वही हो जाता था, अर्थात् सत्यवाक्य कहते थे। क्या कलियुगमें ब्राह्मण ऐसे होंगे। यह प्रश्न पार्वतीने शिवजीसे पूछा—

शिव उवाच—

जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनोदग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिः वरानने ॥

हे पार्वति! दूसरे लोगोंके भले बुरे अन्नके खानेसे जिह्वा (रसना) जल गई है, उसके बोलनेकी शक्तिमें परिवर्तन हो गया, दान लेते लेते हाथ जल गये हैं अर्थात् दान लेते हैं, देते नहीं और ना ही गायत्रीका जपन करते हैं, दूसरोंकी स्त्रियोंपर बुरी दृष्टि डालनेके कारण मन दूषित हो गया है अतः उनके वाक्यमें सिद्धि किस प्रकार रहेगी? तथा च—

दधि न श्रूयते कर्णे घृतं स्वप्ने न दृश्यते।
मुग्धे दुग्धस्य का वार्ता तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥

हे पार्वति! ऐसा समय आएगा कि 'दधि लेलो दधि लेलो' इस प्रकार दधि बेचनेकी आवाज कानमें सुनाई न पडेगी, कोई भी मनुष्य घृतको स्वप्नमें भी न देखेगा। दूधकी तो बात ही क्या है। इन्द्र जैसे राजा या धनीके लिए दहीकी पिछ अर्थात् छाछ (लस्सी) का मिलना भी दुर्लभ हो जाएगा।

उपसंहार— इस समयमें प्रायः कई लक्षण नेत्रोंके सामने नाच रहे हैं। आगेका पता यह प्रतीत होता है कि इस समयसे अधिक भयंकर समय आएगा। अतः प्रत्येक प्राणीको चाहिये, कि परमात्माको सर्वत्र व्यापक जानकर बुरे कर्मोंसे निवृत्त होकर सत्कर्मोंमें मन लगावें और धर्माचरणमें मन लगा दें। मेरी यही प्रार्थना है।

◎ ◎ ◎

दैवत-संहिता

सम्पादक— म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर

वेदोंमें पूजक ऋषियोंकी अपेक्षा पूजनीय देवोंकी प्रधानता है। क्योंकि उपासककी अपेक्षा उपास्यकी मुख्यता सर्वत्र होती है। उपासक उपास्यके गुणोंको अपने अन्दर लाकर तद्वत् बनना चाहता है। वेदोंमें भी ऋषि उपासक हैं और देवता उपास्य। ऋषिगण अल्पगुणान्वित हैं और देवता सर्वगुणान्वित। ऋषिगण देवताओंके गुण अपने अन्दर धारण करना चाहते हैं और देवसदृश बनना चाहते हैं। इस प्रकार देवोंका स्थान मुख्य है।

ये देवता संस्थामें अनेक हैं, पर उनके मन्त्र चारों वेदोंमें बिखरे पडे हैं। अग्निके कुछ मन्त्र ऋग्वेदके १ मण्डलके १ सूक्तमें आए हैं, तो कुछ मन्त्र उसके २४ वें सूक्तमें आए हैं। इसी प्रकार इन्द्रादि देवोंके मन्त्रोंकी भी अवस्था है।

इस संहितामें देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका मन्त्रसंग्रह है। इन्द्रके चारों वेदोंमें जितने मन्त्र आए हैं, उन सबका एक जगह संग्रह कर दिया है। इसी प्रकार अन्य देवोंका भी किया है। इससे वेदका अध्ययन करनेवालोंको बडी सुविधा होगी। उन्हें चारों वेदोंको खरीदनेकी कोई आवश्यकता नहीं। १७ पृष्ठोंमें उत्कृष्ट भूमिका युक्त आकर्षक छपाई, आकर्षक जिल्द। डबलक्राऊन ८ पेजी साइज, भूमिका १७ पृष्ठ, १०४८ पृष्ठ मूल्य ३०) (डा. व्य. पृथक्)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामरिकी हिंसा अहिंसा ही है

[रचयिता— श्री ब्र. योगेन्द्रार्य्यः दर्शनाचार्य, गुरुकुल झज्जर]

★

भारत मांके वीरो तुमको, मांकी लाज बचानी है ।
मांकी लाज बचानेमें, अब लानी काम जवानी है ॥

पुराकालसे लडते रहे हम, भारत मांकी रक्षामें,
अरियोंको सदा भगाते रहे, इस देशधर्मकी रक्षामें ।
अपने गौरवके सौरभमें, प्राणोंको तृण हमने समझा,
ऐसे रणधीरोंकी तुमने, क्या सुन ली करुण कहानी है ॥ १ ॥

बाण मारते भूमिमें पानीकी धार निकलती थी,
गजोंको मार गिराते थे, शेरोंसे कुश्ती होती थी ।
अर्जुन जैसे धनुर्धारी, बलकारी भरत समान हुए,
वीरता वीर अभिमन्युकी फिर तुमको याद दिलानी है ॥ २ ॥

हलचल मचा रणभूमिमें, विमुखोंसे खूब लडा करते ।
नाशवान् यह काय समझ, मृत्युसे सब खेला करते ।
यह जीवन जीर्णवसन सम है, पर नित्य आत्मा अमर रहे,
समरक्षेत्रमें हो हिंसा, वह हिंसा ना श्रुति वाणी है ॥ ३ ॥

शिवजीकी तेज कटार रहे, राणाका भारी भाला हो,
इन वीरोंके बलके समान, कोई हममें हिम्मतवाला हो ।
यदि भारत मांके अंचलको बलिदानोंसे ही भरना है,
नवयुवक बने सब दृढ सैनिक, और सभी बने सेनानी हैं ॥ ४ ॥

भारत मांके वीरो तुमको, मांकी लाज बचानी है ।
मांकी लाज बचानेमें अब, लानी काम जवानी है ॥

॥ शमित्योम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारी संस्था एक स. २१ सन् १८६० ई. संख्या ४६३ पर रजि० है। नाम

संस्था जीवनप्राकृतिक चिकित्सालय

प्राकृतिक चिकित्सामें नई क्रांतिका शुभ संदेश

लेखक एवं प्रकाशक— श्री भरतसिंह वैद्य, प्राकृतिक चिकित्सक सी० ३४१, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली। पृष्ठ २५४, मूल्य रु. ३.००

"प्रस्तुत पुस्तकमें पंचमहाभूतोंके आधार पर रोग निवारणकी विधि और स्वस्थ रहनेके उपायों पर प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्साके अपने ज्ञान और अनुभवको लेखकने इतने सरल और सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया है कि एक साधारण पाठक भी उसको पढकर लाभ उठा सकता है। स्वास्थ्य और सदाचार सम्बन्धी वैदिक मन्त्र और उनके भावार्थ देकर सृष्टिविज्ञानकी व्याख्या की गई है। शरीरकी रचना और उसके विविध अङ्गोंकी क्रियाओंका वर्णन करके रोगोंके निदान एवं उपचारके तरीके बताए गए हैं। जिन रोगियोंने इस चिकित्सा प्रणालीको अपनाकर अपने असाध्य एवं जीर्ण रोगोंसे मुक्ति पाई, उनका विवरण पढनेसे पुस्तककी प्रमाणिकता सिद्ध होती है। लेखककी मान्यता है कि प्रायः सभी रोग मिट्टीके प्रयोगसे दूर किए जा सकते हैं। स्वास्थ्य और उपचारमें दिलचस्पी रखनेवाले पाठक इस उपयोगी पुस्तकका स्वागत करेंगे, ऐसी आशा है।"

११–३–६२ दैनिक हिन्दुस्तान, नई देहली

मैंने सन् १९२१ ई. सेडा. लुई कोहनीकी प्रणाली व अन्य प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियोंका अध्ययन आरम्भ किया, सन् १९३२ ई. तक रोगियों पर भी परीक्षण करता रहा, सन् १९३३ ई. से मैंने आयुर्वेदिक औषधालय मेरठ शहरमें खोल दिया, इसे २५ वर्ष तक अन्य स्थानोंमें भी चलाया। साथमें कभी कभी प्राकृतिक चिकित्साके प्रयोग भी करता रहा, इसके साथ पंचमहाभूत विज्ञानके अनुसंधानके लिये महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीका वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका व यजुर्वेदभाष्यको व अन्य दर्शनोंसे प्रमाण संग्रहकरके वानप्रस्थ समान जीवन व्यतीत करनेका संकल्प लिया अर्थात् सन् १९५८ में औषधालय बिलकुल बन्द कर दिया और जुलाई १९५८ में स्वर्गीय महात्मा गांधीजीकी निसर्गोपचारकी नियमावली उरुलीकाचन (पूना) से मंगाकर ग्रामीण जनताको चिकित्सामें आत्मनिर्भर बनानेके उद्देश्यको पाकर मिट्टीकी पट्टी द्वारा सरल-सूक्ष्म सिद्धांत आरम्भ किया। जो पांच वर्षतक सैंकडों रोगियोंपर शहरों-कस्बों-ग्रामोंमें निरीक्षण-परीक्षण-चिकित्सा द्वारा सभी रोगोंपर एक समान लाभकारी सिद्ध हुआ। इसी सिद्धांतसे टबस्नान-ऐनिमा, निराहार उपवास अन्य उपकरणकी जरूरत समाप्त हो गई है। और शरीरकी रचनाके मूलाधार चार स्तम्भ निश्चय हुए अन्न-शुक्र (वीर्य) श्रम-निद्रा इनकी शुद्धि पुष्टिसे शरीर व आत्माके सब रोग नष्ट हो जाते हैं। इस ज्ञानको लिपिबद्ध करनेके लिये दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रथम जीवनसंदेश (प्राणचिकित्सा) जिसका मूल्य ३.०० है। दूसरी पंचमहाभूत विज्ञान पृष्ठ १६६ मूल्य १.०० डाकव्यय पृथक् है। चिकित्सालय पर निःशुल्क चिकित्सा होती है। विद्यार्थियोंके लिये शिक्षण, परीक्षण, चिकित्साविधि सिखानेका प्रबन्ध करनेका निश्चय है।

पता नं. १ भरतसिंह वैद्य, मंत्री- 'जीवन प्राकृतिक चिकित्सालय' गालिबपुर, डा. खास, जि. मुजफ्फरनगर

पता नं. २ डा. रामचन्द्रसिंहजी, C 341, सरोजनी नगर, नई देहली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदान्तकी साधना

(लेखक— श्री गंगाप्रभु गर्ग अग्रवाल)

यदि संसारके सभी जीव निस्सन्देह एक ही वस्तु एक ही आनन्दकी खोजमें हैं, यदि योगी और भोगी— दोनोंका ही लक्ष्य निस्सन्देह आनंद ही है, यदि प्रवृत्ति मार्गके आदर्श जनकादि राजर्षि आनंदके लिये ही लोकसंग्रहार्थ कार्य करते थे, और निवृत्ति मार्गके आदर्श याज्ञवल्क्यादि महर्षि भी आनंदके लिये ही ब्रह्मचिन्तनमें रत रहते थे, तो निस्सन्देह वास्तविक आनन्दका पता लगाना हमारा सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है। साधारणतया हम समझते हैं कि हमको आनंदका पता तो ज्ञात है, हम यह तो जानते हैं कि आनंद कहां है। किन्तु यह हम नहीं जानते कि उसे प्राप्त कैसे करें, अथवा उसे प्राप्त करनेकी शक्ति हममें नहीं होती है। इसलिये हम दुःखी और उदास रहते हैं, किन्तु वेदान्त इससे उल्टी बात कहता है। वास्तवमें सुख विषयमें चाही हुई वस्तुमें नहीं है। एक मोटा उदाहरण, जो वेदान्तमें दिया जाता है, यह है कि कुत्ता खूनके लालचसे हड्डीको चूसता है हड्डीमें खून तो है नहीं किन्तु नुकीली होनेके कारण वह कुत्तेके मसूडोंसे ही खून निकाल देती है। कुत्ता समझता है कि यह खून हड्डीका है और उससे तृप्तिका अनुभव करता है।

वेदान्त कहता है, इसी प्रकार संसारिक जीव संसारके विषय-भोगोंमें सुखकी कल्पना किया करते हैं। हड्डीके रक्त-शून्य होनेकी भांति सांसारिक भोग्य पदार्थ तो सर्वथा आनंद-शून्य हैं। उनमें सुखाभासकी जो थोडीसी प्रतीति होती है उसका वास्तविक कारण वे बाहरके पदार्थ नहीं, वरन् मसूडोंके खूनकी भांति स्वयं तुम्हारे मनका स्थैर्य है। वास्तवमें वेदान्तके अनुसार मनमें किसी प्रकारकी इच्छाका उठना ही दुःख है। ज्यों ज्यों यह इच्छा तीव्र होती जाती है, त्यों त्यों हमारा दुःख बढता जाता है। इच्छाके कारण मन सदैव चंचल रहता है। किन्तु ज्योंही विषयके मिलनेसे मनमें इच्छाका अभाव होनेसे स्थिरता आती है, त्योंही हमें सुखानुभूति होती है। क्योंकि वेदान्तके अनुसार हमारी वास्तविक आत्मा सच्चिदानंद रूप है। मनकी स्थिरतामें उसका जो प्रतिबिम्ब हमारे मनमें पडता है उसीके फलस्वरूप हमें आनंदका आभास होता है। जैसे जब जलाशयमें किसी प्रकारकी लहरें नहीं उठतीं, तो उसमें सूर्यका जो स्पष्ट प्रतिबिम्ब पडता है, वह बहुत ही कान्तमय होता है। उसी प्रकार हमारा मन जितना ही अधिक इच्छाशून्य होगा हमारे मनको अधिक सुख मिलेगा। यहां जल ही मन है, लहरें ही इच्छायें हैं और सूर्य ही आत्मा है।

अब सहज ही प्रश्न उठता है, कि हमें हमारे ही हृदयपट पर हमारी ही वास्तविक आत्माके दर्शन क्यों नहीं होते? इसमें वेदान्त तीन बाधायें बतलाता है, मल, विक्षेप, आवरण। सचमुच हमारा हृदय दर्पणकी भांति है। किसी भी दर्पणको उपयोगी बनानेके लिये या उसमें स्वच्छ प्रतिबिम्ब दिखानेकी योग्यता होनेके लिये उक्त तीनों प्रकारकी त्रुटियाँ नहीं होनी चाहिये। यदि उसपर धूल गर्द आदि छाई रहेगी, तो उसमें क्या दिखाई देगा? कुछ नहीं। यदि वह बराबर हिलता रहे— कभी क्षणभरके लिये भी एक स्थान पर न टिके तो क्या हम उसमें अपना मुख स्पष्ट देख सकेंगे? नहीं, कभी नहीं, और यदि दर्पण स्वच्छ और स्थिर हो किन्तु यदि आपके और दर्पणके बीचमें कोई परदा डाल दिया जाय तो आप क्या कुछ देख सकेंगे। नहीं रत्तीभर भी नहीं। बस इसीलिये आत्मदर्शनके हेतु पहले अपने हृदयदर्पणको दोषरहित बनाना होगा। हृदयका पहला दोष है मल। यहां मलसे हमारे वे कर्म अभिप्रेत हैं, जिन्हें हम विना किसी प्रकारका सोचविचार किये अपनी विषय वासनाकी पूर्तिके लिये हठपूर्वक करते रहते हैं। इन्हींको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हम पापकर्म कहते हैं। वास्तवमें पाप क्या है और पुण्य क्या है। इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। क्योंकि पाप पुण्य का निर्णय अधिकांशमें देश काल पात्रके अनुसार हुआ करता है। जो काम एक परिस्थितिमें पुण्य हो, वही परिवर्तित परिस्थितिमें किसी दूसरे मनुष्यके लिए पापरूप भी हो सकता है।

इसलिये जिन कर्मोंके करनेसे हमारे हृदयमें सहानुभूतिका क्षेत्र उत्तरोत्तर बढता जाय—वह अवश्यमेव हमारे लिये पुण्य और कर्तव्य है। पहले हम एक शरीरकी दृष्टिसे फिर परिवार जात देश और मनुष्य मात्रकी दृष्टिसे काम करने लगते हैं। इसी मनुष्य मात्रकी दृष्टिसे काम करनेको निष्काम कर्म करना कहते हैं। इसमें फलकी इच्छा नहीं होती। इस लिये जहां तक संभव हो वहाँ तक यज्ञ दान तप आदि सात्विक कर्मोंका अनुष्ठान सभीके लिये उपयोगी बताया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकारके आचरणसे हमारे हृदय दर्पणका मल दूर हो जाता है। किन्तु केवल मल दूर होनेसे ही आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। पहले जिस व्यग्रतासे आप एक शरीरके लिये काम करते थे। उसी व्यग्रतासे अब सैंकडों हजारों, लाखों और करोडों प्राणियोंके लिये काम करते हैं। किन्तु इतने हीसे आपके हृदयमें स्थिरता नहीं आ सकती। उसके लिये आपको इस समष्टि जगत्का ध्येय समझना होगा। और सबसे पहले आपको इस जगत्के संचालक सूत्रको समझना होगा, केवल समझना ही नहीं होगा वरन् उसकी शरणमें जाना होगा। किसी दुःख और विषादके साथ नहीं, वरन् प्रेम और आल्हादके साथ। इसका नाम है और ऋति और इसकी अन्तिम सीमा है आत्म समर्पण। साधक अपने लिये नहीं, मनुष्यमात्रके लिये परोपकारके लिये तो पहले ही से अभ्यस्त हो गया था। व्यक्तिगत कामना उसमें नहीं रहती, जो भी फलाशा रहती है, अब वह भगवद् भक्तिसे समूल जाती रहती है। साधकके हृदयसे मल और विक्षेप दोनों आवरण मिट जाते हैं। यही सच्चा निष्काम कर्म योग है। और यही सच्चा भक्तियोग है।

मनकी—हृदयकी इस अवस्थामें साधकको आनंद होने लगता है। अब उसे कोई चिन्ता नहीं रहती। उसके हृदयमें कोई चंचलता नहीं होती और फलतः अन्तःकरणमें उसी अनादि अनन्त अक्षर और अक्षय सदा—आनन्दरूप आत्माका प्रतिबिंब दिखाई देने लगता है। साधक आनन्दविभोर हो जाता है फिर भी आनंदकी इस पूर्णतामें व्यवहार शेष रहता है।

अनादि और अनन्त भंडार आनन्दका पता चल जाता है। वह उसे प्रत्यक्ष देखता है। अब यह उसके अस्तित्वको कभी अस्वीकर नहीं कर सकता। इतना ही क्यों, वह यह भी निश्चय करता है, कि मैं इस महानन्द व आनन्दका परम अधिकारी हूं। इसलिये यह अब भूलकर भी उन सुखों और विषय वासनाओंकी पूर्तिकी ओर आंख उठाकर नहीं देखता, जिनके अभावमें कभी उसे रातदिन नींद नहीं आती थी। सत्य है जिसके हाथ पारस पत्थर लगे, उसे सोनेका ढेर बटोरनेसे किस लाभकी संभावना हो सकती है। आनंदमें मग्न होनेके लिये आत्मसमर्पण ही तो पारस पत्थर है। जिसे यह युक्ति मालूम हो गई, जिसने इसका मजा चख लिया, वह संसारके द्वंदोंसे मुक्त तो हुआ। किन्तु इतने पर भी मैं तू का झगडा नहीं मिटता। यथा पहले एक बालक चार दर्पणमें अनन्त मुंह देखता है। तो क्या उसे उसी प्रकार यह निर्णय हो आता है, कि यह योग ही सुख है। जैसा कि हम लोगोंको होता है। नहीं, यह बात उसे सीखनी होती है। किसीके बतलानेसे या अपनी युक्तिसे ही धीरे धीरे वह यह निश्चय कर पाता है कि दर्पणमें जो बालक दिखाई देता है। वह कोई दूसरा सच्चा बालक नहीं है। वरन उसकी ही छाया है। निश्चयके लिये वह कभी अपना हाथ मुंहके पास ले आता है और कभी शिरपर हाथ रखता है। और जब देखता है कि जैसा वह करता है ठीक वैसा ही खेल दर्पणका बालक भी करता है। तब कहीं कुछ समय उपरान्त वह उसे अपनेसे गैर नहीं, वरन् अपना आप जानता है और मानता है।

अस्तु, जब इसी प्रकार हृदयदर्पणमें मल और विक्षेपके दूर होनेसे अपने आप उस सच्चिदानंद आत्माका प्रतिबिम्ब पडने लगता है, तब उसकी अलौलिक प्रभा देख कर भक्त गद्‌गद हो जाता है। और जब ऐसे समयमें कृपालु गुरु देव कहते हैं— बेटा यह सब यह चित्त और आनंद, जिसे तू प्रत्यक्ष देख रहा है, यह कोई दूसरा नहीं स्वयं तू ही है। 'तत्त्वमसि' तब वह क्षण भरके लिये आश्चर्यमें डूब जाता है। फिर उसकी जो दशा होती है, शब्दों द्वारा उसका यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता। बस, यहीं वेदान्तके अनुसार आचरण दोषका लोप हो जाता है। और परमपदकी प्राप्ति है यही हमारा अन्तिम पद है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मठा और आरोग्यता

(लेखक— श्री ग. पां. परांजपे वैद्य, हरीपूर सांगली)

[अगस्त माससे आगे]

३– मठेके प्रकार

जितने प्रकारका दूध होता है उतने ही प्रकारका मठा भी होता है। गाय, भैंस और बकरीके दूधका उपयोग विशेषतासे किया जाता है। उसी प्रकार इनके दूधसे बना हुआ मठा भी उपयोगमें लाते हैं। जानवरोंके दूधमें गायका दूध श्रेष्ठ समझते हैं। वैसे ही उसके दूधका मठा भी सबसे उत्तम होता है। यदि मठेमेंसे मक्खन न निकाला जाय तो वह मठा गरू होनेके कारण पचनमें बाधा करता है। लेकिन मक्खन निकाल लेनेपर वही बहुत फायदा करता है। गाय और बकरीके दूधसे जो मठा बनता है वह त्रिदोष नाशक होता है। लेकिन भैंसके दूधका मठा पचनेमें गरू होनेके कारण उससे कफ होता है। इसलिए इसे उपयोगमें लानेके पहिले उसमें सोंठ, काली मिरच, पिप्पली और जवाखार या सैंधव नमक इनके मिश्रणका थोडा चूर्ण मिलाना चाहिए। आरोग्यशास्त्रका ऐसा ही कहना है।

उपर कहे अनुसार मठेके प्रकार होते हैं। उनमेंसे जिस प्रकारका मठा मिल सके उसका ही उपयोग किया जावे।

४– मठा कब और किसे न खाना चाहिए?

भावप्रकाश ग्रन्थमें निम्न वाक्य पाए जाते हैं– 'उष्णकालमें, शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें मठा न खाना चाहिए। कफक्षय, व्रण, मूर्च्छा, भ्रम (पागल होना), दाह और रक्तपित्त इन विकारोंमें मठा खाना ठीक नहीं। बहुत क्षीण मनुष्यको भी मठा न खाना चाहिए।' शरद् और ग्रीष्मऋतुमें मठा न खाना चाहिए। इस कथनका अर्थ ऐसा नहीं हो सकता कि इन दिनोंमें मठा बिलकुल ही न खाया जावे। उसका केवल इतना ही मतलब है कि इन दिनों मठा अल्पतासे लिया जावे। मठेसे कोठेमेंका आम (विजातीय पदार्थ) युक्त कफ नष्ट होता है। परंतु मठेके इन गुणोंके कारण, गरमीमें प्रथम ही उत्पन्न होनेवाले कफ–संचयकी वृद्धि मठेसे न होवे इस उद्देशसे ही यह निर्बंध रक्खा गया है। लेकिन मठेसे त्रिदोषका कोप नहीं होता। इसलिए गरमीमें भी मठा खानेमें कोई आपत्ति नहीं। यह तो हुई आरोग्य मनुष्यकी बात। अब रोगी मनुष्यके विषयमें, कमसे कम मेरा तो अनुभव ऐसा है कि यदि उसका रोग तक्रसाध्य हो तो उसे मठा खानेमें कोई हरकत नहीं; उससे उसे कुछ भी हानि न होगी। उसी प्रकार क्षयके अनेक भेदोंमेंसे केवल कफक्षयमें ही मठेसे लाभ नहीं होता। उसके अन्य भेदोंमें विशेषकर जब अग्निमांद्यके कारण मल चिकना और गाढापतला होता है, मुँहमें अरुचि आती है और अन्नसे द्वेष होता है तब पाचक, शक्तिवर्धक और रुचि उत्पन्न करनेवाले पदार्थ अवश्य खाना चाहिए। ऐसी अवस्थामें मठेसे बहुत लाभ होता है। (देखो चरक चिकित्सास्थान अध्याय ८)

पहिले कह चुके हैं कि मठा पीनेकी कोई साधी वस्तु नहीं है। वह अन्नके बराबरीका पेय पदार्थ है। जब मनुष्य बहुत ही दुर्बल हो जाता है तो उसे मठा नहीं पचता। उसे मठेसे भी हलके पदार्थकी आवश्यकता रहती है। ऐसे मनुष्यको मठेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

ऊपर जहाँ तक हो सका मठेके विषयमें विचार किया है। उस पर हर एकको भली भाँति मालूम हो जावेगा कि इस मठारूपी आरोग्यता संपत्तिकी ओर ध्यान अवश्य देना चाहिये और आरोग्यताके संरक्षणमें उसका ठीक ठीक उपयोग करना चाहिए। चाहे जैसी देशी विदेशी दवाइयाँ लेकर शरीरमें रोगका मूल जमानेमें कोई भी लाभ नहीं। चाय, काफी आदि सरीखे पेय और मद्य पदार्थोंसे, मांस आदि सरीखे खानेके पदार्थोंने केवल रोगोंकी वृद्धि ही होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसलिए जहां तक हो सके उन्हें दूर रखना चाहिए और आरोग्यतावर्धक पदार्थ खाना चाहिए। जिनका परिणाम त्वरित दिखाई दे— चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो– ऐसी मायावी दवाइयोंकी खोजमें आजकलके विद्वान् लगे हुए हैं। औषधिका अधिक परिणाम न लेना पडे, न उनकी कडुवाहट जान पडे, इस क्षणिक सुखकी लालसासे औषधियोंकी लसें बनाकर उनसे टीके लगाए जाते हैं। परंतु ये सब उपाय मठे सरीखी दिव्य और नैसर्गिक औषधिके सामने किसी भी कामके नहीं। इसलिए जिसे सुखकी अपेक्षा हो उसे मठेका भोजनमें सदैव उपयोग करना चाहिए। मठेसे शक्ति नहीं घटती बल्कि उससे शक्ति बढती है और अंग पुष्ट होते हैं। इस बातकी ओर प्रत्येक विद्यार्थी और युवकको ध्यान देना चाहिए।

सारांश– मठा आरोग्यता–प्राप्तिके मुख्य साधनोंमें एक अत्युत्कृष्ट साधन है। इसलिए हमारी सबसे यही प्रार्थना है कि वे मठेके उपयोगमें बिलकुल कसूर न करें।

५– रोगानुसार मठा लेनेकी रीति

१. अग्निमांद्य– २ से ४ रत्ती तक काला या सैंधव नमक मिलाकर मठा लेना चाहिए।

२. संग्रहणी– मठेमें घिसा हुआ चित्रकन्दक आयुमान-के अनुसार २ से ८ रत्ती तक और सैंधव नमक २ से ४ रत्ती तक लेकर दोनोंको मठेमें मिलाकर वह मठा पीना चाहिए।

३. बवासीर– एक काँसेके या कलई किए हुए बर्तनमें अंदरसे, पानीमें घिसा हुआ चित्र कन्दक ४ से १२ रत्ती तक लगाकर वह सूख जाने पर उसमें दूध जमाना चाहिए। दही बन जाने पर उसका मठा बनाकर खाना चाहिए।

४. उदावर्त– सैंधव नमक २ से ४ रत्ती तक और उतना ही काला नमक और १ से ४ रत्ती तक लेंडी पीपर इन सबको मठेमें मिलाकर मठा खूब हिलाना चाहिए और फिर वह खाना चाहिए।

५. मूत्रकृच्छ– (प्रकार पहिला) पुराना गुड–पुराना न मिले तो नया भी चल सकता है— १ से ८ रत्ती तक मठेमें डालकर मठा हिलाना चाहिए और एक एक घंटेके बाद पीना चाहिए।

(प्रकार दूसरा) कबाब चिनी २ से ८ रत्ती तक और उतने ही गोखरू लेकर उन्हें चूर्ण करना चाहिए। फिर उसे मठेमें मिलाकर वह मठा दिनमें तीन बार लेना चाहिए। त्वरित आराम होता है।

६. विषम ज्वर– आंत्रविकृति प्राधान्यज्वर– अदरखका रस १० बूँद, लहसुन $\frac{1}{2}$ से २ रत्ती तक, सौंफ २ से ८ रत्ती तक, हींग $\frac{1}{8}$ से १ रत्ती तक इन सबको मठेमें मिलाकर वह मठा बार बार थोडा कर रोगीको चाहे जितना (८० तोले तक भी) खाने देना चाहिए। उपाय सफल होता है।

७. आक्षेपक– काली मिरच १ से ४ रत्ती तक चूर्ण कर, मठेमें मिलाकर वह मठा थोडा थोडा प्रति घंटे बाद देना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है।

८. कंपवायु– अश्वगंधाका चूर्ण १ से ८ रत्ती तक मठेमें मिलाकर ४० तोले तक मठा रोज सुबह कुछ खानेके पहिले ही पीना चाहिए। ६ से १२ महीनेसे तक यह उपाय करना चाहिए।

९. अश्मरी– जवाखार, या अधर जडाका क्षार इनमें-से कोई भी एक १ से ४ रत्ती तक, या हलदी और इन्द्रजव इनका चूर्ण २ से ८ रत्ती तक मठेमें मिलाकर वह मठा सुबह शाम दोनों समय भोजनके पहिले ५–५ तोले पीना चाहिए।

१०. पांडुरोग– चित्र कन्दकका चूर्ण १ से ८ रत्ती तक और किरमानी अजवाइन १ से ४ रत्ती तक मिलाकर वारंवार ५–५ तोले देना चाहिए।

सुखमार्ग

मासिक–पत्र

सुख सम्पति पानेके लिये सामाजिक, धार्मिक वैद्यक एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओंसे ओत–प्रोत ४० वर्षोंसे भारतियोंमें जागरणका शंखनाद करनेवाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढें। यह बडे–बडे विद्वानोंके लेख, लेकर हजारोंकी संख्यामें छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं प्रश्न–उत्तर और लेख समाचार मुफ्त छपाता है।

वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना, मुफ्त
पता– सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीगढ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११. गंडमाला– आँवले, हर्रे, सोंठ और काली मिरच इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ से १२ रत्ती तक और हलदी ४ से १२ रत्ती तक मिलाकर रोज सुबह मठा पीना चाहिए।

१२. शीतपित्त– कोष्ठ, हर्रे, आँवले और सोंठ इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ से ४ रत्ती तक लेकर वे सब मठेमें मिलाकर वह मठा सुबह पीना चाहिए।

कोष्ठ और सफेद मिट्टी मठेमें मिलाकर शरीरमें लगानी चाहिए। १५ मिनट बाद गरम पानीसे नहाना चाहिए। बहुत ही लाभ होता है।

१३. मेद– हर्रे, बहेडा, आँवले इनका चूर्ण मठेमें २ से १५ रत्ती तक मिलाकर वह मठा रोज दो बार पीना चाहिए।

१४. प्लीहोदर, यकृतोदर, जलंधर रोग– इनमें सिर्फ मठा या उसमें त्रिवृत्‌का चूर्ण ४ से २० रत्ती तक प्रत्येक बार मिलाकर ५–५ तोले मठा वारंवार देना चाहिए।

१५. पेट शूल– अजवाइन, सौंफ, कालानमक, इनका चूर्ण २ से ४ रत्ती तक और हींग $\frac{१}{४}$ से १ रत्ती तक मिलाकर वारंवार मठा देना चाहिए।

१६. पेटके कृमि– सैंधव नमक, कुडेकी जड, किरमानी अजवाइन और बायविडंग इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ से८रत्ती तक मिलाकर मठा सुबह पीना चाहिए। उपाय उत्तम है। आजमाने पर ये सब उपाय उत्तम पाए गए हैं।

६– मठेका परिमाण

आयु, शक्ति, पचन, जल, पवनके अनुसार मठा खानेका प्रमाण कम अधिक करना पडेगा। परंतु आगे दिए हुए परिमाण साधारण अवस्थामें योग्य और उत्तम सिद्ध हुए हैं।

आयु	दिन	मठा (तोले)
२ से ५ तक	१	५
५ से ८ तक	१	१० से २० तक
८ से १५ तक	१	२० से ४० तक
१५ से २५ तक	१	२० से ६० तक
२५ से ६० तक	१	३० से ४० तक
६० से ८० तक	१	२० से २५ तक
८० से १०० तक	१	१० से २० तक

ठंडमें भरपूर मठा खाना चाहिए। बरसातमें परिमाण आधा करना चाहिए। गरमीमें दिनको भरपूर मठा खाना चाहिए। रातको मठा न खाना चाहिए। कारणकी वह रातको न पचनेसे बहुत कष्ट होते हैं।

मठा पीनेके बाद तुरंत ही उसपर ठंडा या गरम पानी चमच भर पीना चाहिए जिससे गलेमें या दाँतोंपर मठेके एसिडका परिणाम नहीं होने पाता।

टी. बी. (तपेदिक) की

अचूक चिकित्सा घर बैठे करें। ५८ वर्षकी खोज अनुभव एवं परीक्षणका परिणाम, 'यज्ञचिकित्सा' मूल्य ५.०० सेनेटोरियमका परिणाम ८०%। लेखक— सरकार द्वारा अनेकबार पुरस्कृत एवं सम्मानित स्व. डा. फुन्दनलालजी अग्निहोत्री एम. डी (लंडन) मेडिकल आफिसर टी. बी. सेनेटोरियम।

लेखककी कुछ अन्य पुस्तकें

(२) आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा–आमुख लेखक— स्व. श्री मावलंकरजी, अध्यक्ष लोकसभा। हर रोगकी सरल अचूक चिकित्सा घर पर ही स्वयं करें। मू. ४.००

(३) आरोग्यशास्त्र— सर्वदा स्वस्थ रहनेके वैज्ञानिक अनुभूत नियम बतानेवाली अपने विषयकी एकमात्र पुस्तक। उपहारमें देनेके लिए अनुपम भेंट। मू. २.००

(उक्त पुस्तकें शिक्षा विभाग एवं पंचायतराज द्वारा स्वीकृत और सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं।)

(४) राष्ट्र उत्थानकी कुंजी— गऊ प्रदत्त पदार्थों द्वारा अनेक रोगोंकी चिकित्सा एवं गऊकी उपयोगिता बतानेवाली अनूठी पुस्तक। मू. ००.५० डाक व्यय सबका पृथक्

स्वास्थ्य भंडार, १६ केला बाग, बरेली,
ब्रांच, स्वास्थ्य भंडार, 7A/३ लाजपतनगर, लखनऊ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगवान् कहीं दूर नहीं, आपके पास ही तो हैं

[लेखक— श्री शिवनारायण सक्सेना, एम. ए., विद्यावाचस्पति, सि. प्रभाकर]

⊙

अपनी आत्मामें जो भी शक्ति है, जो भी प्रकाश है वह सब ईश्वरका ही तो है। परमात्मा मुझसे अलग तो हैं नहीं। यदि कर्तापनका अन्तर न रहे तो मुझमें और परमात्मामें भी कोई अन्तर नहीं दिखाई पडे। व्यक्तिका साथी ईश्वर है, ईश्वर यदि चला जावे तो फिर व्यक्तिका अस्तित्व ही कहां रहता है ? ऐसा लगता है कि सृष्टिके आरंभमें ईश्वरने जो रचना की वह अधूरी थी, कोई तेज दौड लेता था, तो कोई शक्तिशाली था, किसीका कण्ठ मधुर था, तो किसीमें सौन्दर्यकी अधिकता थी, सभीमें एक दो गुण विशेष प्रकार के थे, गुणोंमें समानता न थी। कोई प्राणी ऐसा न था जिसमें सभी प्रकारके गुण हों शायद इसीलिये ईश्वरने आगे चलकर सभी प्रकारके गुणोंवाले प्राणीकी रचना की, जिसे हमें मनुष्य कह सकते हैं। मनुष्यकी रचनामें ईश्वरको अवश्य विशेष सावधानी रखनी पडी होगी एक एक पुर्जेको कलात्मक ढंगसे जोडकर इतनी सुन्दर रचना की गई फिर क्यों न ईश्वरको भी अपनी अनुपमकृति पर आश्चर्य हुआ होगा।

पुरातनकालसे आजतकके मानव जीवनका इतिहास जब हम देखते हैं तो ऐसा लगता है कि मनुष्य एक समय बुद्धिमान्, गुणवान्, तथा ज्ञानवान् माना जाता था पर आज उसके दैवी गुण समाप्त होते जा रहे हैं और उनका स्थान आसुरी प्रवृत्तियाँ लेती जा रही हैं। आज स्वार्थपरता धोखेबाजी, अंधविश्वास, विश्वासघात, हिंसा जैसे अनेक अवगुण बढते जा रहे हैं। आज लोग बडी दयनीय स्थितिमें जीवन बिता रहे हैं। वे पतनकी ओर निरन्तर दौडते हुये दिखाई पडते हैं। ऐसी अवनत अवस्थाको देखकर यही सोचना पडता है कि मनुष्यके अन्दर ईश्वरका निवास नहीं है। यदि दीन हीन प्राणीमें सर्वगुणसम्पन्न, तथा शक्तिशाली ईश्वरकी उपस्थिति होती तो शायद मानव इतनी गिरी स्थितिमें न पहुंचता। पर शास्त्रकार तो अपने ही भीतर परमात्माके दर्शन कराते हैं, योगवासिष्ठमें लिखा है !

न ह्येष दूरे नाभ्याशे नालभ्यो विषमे न च।
स्वानन्दाभास रूपोऽसौ स्वदेहादेव लभ्यते ॥

अर्थात्— परमात्मा न तो दूर है और न कठिनाईसे प्राप्त होता है, वह अपनी देहके भीतर ही है और आत्मानन्दके रूपमें प्रत्यक्ष है।

यह बात अवश्य है कि परमात्माका दर्शन हम इन चर्म चक्षुओंसे नहीं कर सकते। शास्त्रका अध्ययन करने अथवा सन्त महात्मा या गुरु विद्वानोंकी कृपासे भी ईश्वरके दर्शन हमें नहीं मिल सकते, यदि हमें अपने प्यारे प्रभुका दर्शन करना है तो आत्माको निर्मल, पवित्र तथा स्वस्थ बनाना होगा।

व्यक्तिकी दयनीय स्थितिका कारण जानना चाहे तो स्पष्ट हो जाता है उसका मन इतना गन्दा तथा अन्धकारमय हो गया है कि वहां तक ईश्वरका प्रकाश पहुँच ही नहीं पाता। हम साबुन, टिनोपाल तथा अनेक प्रकारके पाउडर लगाकर अपने कपडे साफ करते हैं। स्वच्छ जलसे स्नान कर शरीरकी गन्दगीको छुडानेका प्रयास करते हैं, पर क्या आपने कभी अपने मानसिक विकारोंको निकालकर मनोभूमिको स्वच्छ बनानेका यत्न किया है ? यदि व्यक्ति शुरूसे ही सावधान रहता, ईश्वर द्वारा जो उसे अनन्य शक्तियाँ मिली हैं यदि उनका ठीक ढंगसे उपयोग करता, तो आज पशु, पक्षीयोंसे भी उसकी गिरी हुई हालत क्यों हो जाती ! व्यक्तिको अनेक प्रकारकी सुख सफलताएँ तथा सम्पदायें मिली थीं जिनसे अपना जीवन सुख पूर्ण ढंगसे व्यतीत कर सकता था, पर उसने मनमानी तथा असावधानीसे सब अस्त व्यस्त कर दिया। अन्तःकरणकी सच्ची पुकार जो ईश्वरीय पुकार ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है सुनी अनसुनी करने लगा, इसलिये नाना प्रकारकी विपत्तियाँ आज भुगत रहा है। अपनी प्रगतिकी जड काटनेका श्रेय मनुष्यको स्वयं ही है ईश्वर पर दोष रखनेसे कोई लाभ नहीं होनेवाला है।

व्यक्तिके जीवनमें अनेक प्रकारकी भौतिक सफलताओंके प्रलोभन, पत्नी, बच्चों व अन्य परिवारवालोंका मोह, धन, दौलतकी लालच, वासना, तृष्णा तथा अन्य अनेक प्रकारके आकर्षण विचलित करते हैं। इन चक्करोंमें पडकर हमें यह ध्यान ही नहीं रहता कि हमारा जीवन लक्ष्य क्या था ? हमें क्या करना चाहिये ? वास्तवमें हमारे क्या कर्तव्य हैं ? यदि प्रमुख उद्देश्यकी ओर बढनेकी हमारी इच्छा दृढ नहीं है तो हम एक बार नहीं अनेक बार भटकते रहते हैं। कठोपनिषद्में यम और नचिकेताका प्रसंग आता है। नचिकेता यमसे ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान प्रदान करनेका निवेदन करते हैं। पर यम उसकी अच्छी प्रकार परीक्षा ले लेते हैं कि इसकी इच्छा किसी कामनाको पूर्ण करनेके ध्येयसे तो नहीं है! तभी वे आत्माका ज्ञान कराते हैं, पहले यम पूरी तरह परीक्षा करते हुये पूछते हैं—

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानं त्वा कामभाजं करोमि॥

अर्थात्— हे नचिकेता। धन, वैभव और चिरकाल तक जीवन आदि जो कुछ चाहो इस आत्मज्ञान सम्बन्धी वरके बदलेमें मांग लो। तुम इस भूलोकमें महान् ऐश्वर्यशाली बनो। मैं तुम्हें सम्पूर्ण भोगोंको भोगनेमें समर्थ बनाये देता हूँ।

नचिकेताकी जिज्ञासाके बदले यम इतने वरदान देते हैं फिर भी वह इनमें न उलझ कर ब्रह्मदर्शनकी रटको छोडता नहीं है। यदि इसी प्रकार हमारी भी तीव्र आकांक्षा हो तो क्या ईश्वरकी कृपाके पात्र हम नहीं बन सकते ? पर बननेका प्रयास करें तब ही तो कुछ मिल सकता है। बस निर्मल हृदय बनाने भरकी देर है, शास्त्रकारका यही कहना है—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एव-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

सौ वर्षका पंचांग

इस सौ वर्षके पंचांगमें वर्ष, मास, तारीख अन्य देशोंका समयचक्र तथा ज्योतिष्चक्र सभी की गणना उत्तम रीतिसे और बिल्कुल ठीक ठीक की है। यह एक महान् अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन है। सीमित प्रतियां ही शेष हैं। आफिस, स्कूल, घर और पुस्तकालयोंके लिए अत्यन्त लाभदायक एवं उपयोगी है।

मूल्य ५.०० पांच रुपया, रजिस्ट्री द्वारा ६.००

लिखिए—

कोचीकार एजेन्सी, ८१४८६ टी. डी.
डब्ल्यू गेट, पो. बॉ. नं. १३३. कोचीन-२

अर्थात्— संसारकी रचना करनेवाला वह परमात्मा सदैव प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। इस महात्माको जो शुद्ध हृदय और निर्मल मनसे अपने भीतर विद्यमान देखते हैं वे अमृत तत्त्वको प्राप्त कर लेते हैं।

आज यदि दरोगाजीसे हमारा परिचय हो जाता है, वे हमारे मित्र बन जाते हैं फिर एक बार भले ही हमसे अपराध हो जावे हमें भय नहीं लगता। क्योंकि उस मामलेकी बात आखिर उन्हीं सज्जनके पास तो जानेवाली है जिनके साथ हम घन्टों गप्पे लडाते हैं। ठीक उसी प्रकार यदि हमारा ईश्वरसे सम्बन्ध बढ जावे तो सभी प्रकारके दुःखोंमें आनन्दानुभूतिको प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर तो संसारका संचालक और शक्तिशाली तथा सबका स्वामी है। संसारमें अनेक प्रकारके आकर्षण हमें आकर्षित करते रहते हैं, हमारा मन भी इधर उधर भटकता रहता है, क्षणिक सुख तथा शान्तिके लिये हम दौडते रहते हैं पर विवेकशीलता तो इसीमें है कि जो सत्य है उसीका आचरण किया जावे। आत्मज्ञानके द्वारा हमारी मनोभूमि परिष्कृत हो सकती है पर विभिन्न सुख तथा ऐशआरामकी भावनाके बीच ईश्वर-प्राप्तिकी जिज्ञासा दब जाती है। तब तक हम किसी कार्यको करनेका पूर्ण संकल्प नहीं कर लेते; उसे पूरा करनेके लिये लक्ष्यका निर्धार नहीं करते तबतक सफलता भी कैसे मिल सकती है ? इस लिये अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवनका प्रमुख लक्ष्य बनाकर उसको प्राप्त करनेके लिये निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिये ।

मानव जीवनका सबसे बडा लक्ष्य तो ईश्वरको प्राप्त करना है, ईश्वरके प्राप्त करनेसे ही हमारा अन्तःकरण ज्ञानकी ज्योतिसे जगमगा उठेगा । यह बात अवश्य है कि यह मार्ग कण्टकाकीर्ण है, पर जो दृढ इच्छावाले हैं, जो संसारमें आकर कुछ कर दिखाना चाहते हैं वे बडीसे बडी कठिनाइयोंका सामना करते हुये भी अपने लक्ष्यको एक दिन प्राप्त कर लेते हैं । महर्षि रमणने परमात्मप्रेमको ही सच्चा प्रेम बताते हुये जीवनके सत्यको पहचाननेका आदेश दिया है ' परमात्माके प्रति प्रेम ही सच्चा प्रेम है अन्य सारे आकर्षण वासनायें हैं, जिनका सुख क्षणिक और परिणाममें दुःखकारक है । जिस प्रेममें अनन्तता, अक्षयता और निरपेक्षिता न हो जो पवित्रता और समरूपतासे रहित हो वह प्रेम नहीं मोह है । वास्तविक और नित्य नवीनतावाला प्रेम केवल ईश्वर विषयक ही हो सकता है ? संसार विषयक नहीं । परमात्माके प्रति प्रेम रखनेवाला अपने सच्चे स्वरूपको जान लेता है और अन्य प्राणियोंकी वास्तविकताको समझ लेता है जिससे उसके भीतर विश्व प्रेमकी भावना जागृत हो जाती है । परमात्माके प्रति प्रेम रखनेवाला जीवनके सत्यको पहचान लेता और आत्माके दिव्य दर्शन कर लेता है और उसे एक ऐसी अहेतुक परितृप्ति प्राप्त हो जाती है कि फिर किसी वस्तुकी कामना नहीं रहती । '

विश्वास रखिये आपमें जो भी दुर्बलताएं हैं, यदि उनपर आप विचार करेंगे तो वे तुच्छ मालूम पडेंगी और हो सकता है कि उनके प्रति आपके मनमें घृणा उत्पन्न हो जावे । यदि यह बुराइयां धीरे धीरे कम होंगी तो अच्छाइयाँ बढेंगी । ईश्वर तेजस्वी तथा प्रकाशवान् है इसलिये आपमें भी अज्ञानान्धकार दूरकर प्रकाशकी दिव्य किरणें पहुँचाना चाहता है अतः अपनी मानसिक दुर्बलताओंको दूर कर ईश्वरकी सलोनी मूर्तिको अपने मन मन्दिरमें स्थापित करनेका प्रयास करिये ।

यदि आप जानना चाहते हैं कि—

(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी ?
(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी ?
(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी ?

तो अवश्य पढिये—

यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो " राज्यव्यवस्था " का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए ।
यदि आप समाजसुधारक हैं तो " समाजव्यवस्था " आपको अवश्य देखनी चाहिए ।
यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो " अर्थव्यवस्था " पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी ।
और यदि आप अधिकारी हैं तो " प्रजाव्यवस्था " पर आपको ध्यान रखना पडेगा ।

पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गईं हैं । क्योंकि इन सबका समाधान आपको—

चाणक्य सूत्राणि

में मिल सकता है । सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकासे ६९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १२) (डा. व्य. पृथक्) है । शीघ्रता कीजिए । आज ही मंगवाए ।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ', पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कण-संचय

(लेखक— श्री भास्करानन्द शास्त्री, सिद्धान्त-वाचस्पति, प्रभाकर, स्वाध्याय-मण्डल पारडी [गुजरात])

अपनी दीनता स्वीकार कर लेना अपमानकी बात नहीं है। असली अपमान तो इसमें है कि हम दीन होते हुये भी अपनी दीनताको दूर करनेका यत्न और उद्योग न करें।

— अब्राहम लिंकन

बिना प्रेमके सत्यका सुहाग लुट जाता है।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जब कभी तुमको अपनेसे अधिक बुद्धिमान्से वार्तालाप करनेका मौका पडे और तुम यह समझकर विवाद करने लगो कि लोग तुम्हारी बुद्धिमत्ता जान जायँगे तो याद रखो लोग ऐसा न समझ कर तुम्हारी मूर्खताको जान जाँयगे।

— सादी

उस घोडेसे, जो हमें नीचे गिरा दे, वह गधा कहीं अच्छा है जो हमें ले जाय। — जे. जी. हालेन

दिनभर बुरी भावनाओं और बुरे कर्मोंसे बचे रहना रात-भरके भजनसे बढकर है। — डिमास्थनीज

मुँहपरका दाग दिलके दागसे अच्छा है।

—सर्वेन्टीज

नदीका अन्त कहां ? जलके अथाह सागरमें। इसी प्रकार कार्यका अन्त भी असीम उत्साह और आनन्दके अपार सागरमें जाकर होता है। — रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मनुष्यसे भूल होना एक साधारण बात है। भूल दुर्भाग्यसे ही होती है अतएव यह क्षम्य भी है। पर सत्यका ज्ञान होनेपर भी ठीक आचरण न करना ईश्वरकी दृष्टिमें अति नीच कर्म है और मनुष्यकी दृष्टिमें महापाप। — मैजिनी

किसी नीच कर्मको फिर न करना ही उसका उत्तम प्रायश्चित्त है।

—अज्ञात

हमारी प्रसन्नता हमींपर निर्भर है। यदि हम दुःखी हैं तो इसका कारण हमीं हैं अन्य कोई नहीं। —एवेबरी

जो अपना शासन भलीभाँति नहीं कर सकता है, वह यदि दूसरोंका स्वामी बननेकी आशा करे, तो ऐसे व्यक्तिके लिये इससे अधिक हास्यास्पद बात और क्या हो सकती है?

— अज्ञात

जो स्वयं ही अपना स्वामी है, वह दूसरोंका भी शीघ्र बन जायेगा। — बेकन

जब स्वार्थका अन्त होता है, तभी क्लेशका भी अन्त होता है। — जेम्स एलन

अमरता तो मरने ही में है। — महात्मा गान्धी

जैसे हम द्वेषके कारण संसारको नरकतुल्य कर देते हैं, वैसे ही प्रेमसे स्वर्गतुल्य भी बना सकते हैं।

— राल्फ वाल्डो ट्राइन

अशान्तिके बिना शांति नहीं मिलती, लेकिन अशान्ति हमारी अपनी हो। हमारे मनका जब खूब मंथन हो जायगा, जब हम दुःखकी अग्निमें खूब तप जायँगे, तभी हम सच्ची शान्ति पा सकेंगे। — महात्मा गान्धी

हे विश्व ! मेरी मृत्युके पश्चात् ये शब्द अपने कानोंमें रख छोड — 'मैंने प्रेम किया।' —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यदि मुझको प्रेमसे वञ्चित रखते हो तो प्रभात क्यों गाता हुआ निकलता है। — रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शब्दोंकी अपेक्षा कर्म अधिक ऊँचे स्वरसे बोलते हैं।

— अज्ञात

अपने ऊपर शोकजनक विचारोंका आधिपत्य न होने दो, विपत्तियोंसे घोर युद्ध करो। आपत्तियोंसे डरकर भागनेसे कोई लाभ नहीं। वीरतापूर्वक उनका सामना करो वे टल जायँगी। — एवेबरी

जो स्वयं अपना स्वामी नहीं है, दूसरे शीघ्र ही उसके स्वामी बन जायेंगे। — एवेबरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि प्रेम ही किया जाय तो उसमें किसीकी हानिकी सम्भावना नहीं, पर जहाँ बदलेमें प्रेम किये जानेका भाव उत्पन्न हुआ और हानियोंका बीज पडा।

— स्वामी विवेकानन्द

गाली सह लेना— इसका अर्थ है गाली देनेवालेकी इच्छाके वशमें न होना— गाली देनेवालेको असफल बना देना, यह नहीं कि जैसा गाली देनेवाला कहे, वैसा करना।

— महात्मा गान्धी

हमारा जीवन बिलकुल वैसा ही है, जैसा कि हमने इसको अपने कर्मों तथा विचारोंसे बना दिया है।

— जेम्स एलन

सच्चे प्रेमको स्थानकी दूरी प्रेम करनेसे नहीं रोक सकती। चन्द्रमा आकाशमें है और कुमुदिनी तालाबमें, पर जिसका जिससे प्रेम है, सच्चा प्रेम है वह दूर रहते हुये भी उसके पास है। — महात्मा कबीर

तुम मुझे यह बता दो कि वह किसके साथ रहता है? तो मैं बता दूँगा कि वह कैसा आदमी है। — लावेल

ओ न्यायाधीशो! आत्माकी ताकत बडी भारी है, क्योंकि जो अपराधी हैं उन्हें हर समय दण्डका भय है और जो अपराधी नहीं हैं वे निर्भय हैं। — सिसैरो

जिस वस्तुका हम विचार कर सकते हैं उसे प्राप्त भी कर सकते हैं। — जेम्स एलन

शोकरहित दशा केवल शोक हीके द्वारा प्राप्त हो सकती है।

— जेम्स एलन

खाईके आनेके पहले ही कूदनेके लिये छलाङ्ग मारना कहाँकी बुद्धिमत्ता है। — अज्ञात

जो सत्य है, उसे कोई मिटा नहीं सकता और असत्यको कोई अस्तित्व प्रदान नहीं कर सकता।

— महात्मा गान्धी

शत्रुसे शत्रुता करना वैरका दूना बढाना है। वैर दूर करनेका उपाय तो प्रेम ही है। — धम्मपद

घमण्ड मूर्खताका चिन्ह है, खून कम होनेपर शरीर वायुसे फूल जाता है, वैसे ही जिसमें बुद्धिकी कमी है, वही अहंकार द्वारा इसे पूरी करनेकी चेष्टा करता है। — बेकन

लोग अन्धेरेमें या तो चलते नहीं, अगर चलते भी हैं तो टटोल टटोलकर और धीरे धीरे सदा सूर्यके निकलनेकी आशा करते हुये, उसी प्रकार आपत्तिरूपी अन्धेरेमें धैर्यसे काम लो और सुदिनरूपी सूर्यकी प्रतीक्षा करो।

— राम सेवक

पढो और बुद्धिमान् बनो, इसलिये नहीं कि लोग तुमको बुद्धिमान् समझें, और न इसलिये कि तुम अपनी बुद्धिमानीसे आनन्द उठा सको; पर इसलिये कि जो बुद्धिमान् हैं वह बुद्धिमानीसे सेवा कर सकता है।

— जे. कृष्णमूर्ती

बुद्धिमान् मूर्खोंसे बहुत कुछ सीख लेता है; परन्तु मूर्ख बुद्धिमानोंसे कुछ नहीं सीखता। — एवेबरी

दूसरोंपर शासन या नियन्त्रण करनेका अधिकारी वही है जो अपने पर शासन करनेमें पास हो चुका है।

— जेम्स एलन

जीवित रहनेके लिये खाओ, न कि खानेके लिये जीवित रहो। — फ्रीलिंडग

सफल बननेके लिये योग्यता और अयोग्यताका विचार निर्मूल है, मुख्य वस्तु तो प्रचुर परिश्रम है।

— कार्लाइल

इसकी चिन्ता न करो कि घटनायें तुम्हारी इच्छाके अनुकूल ही घटें। जैसे और जिस रूपमें वे घटें, उन्हें घटने दो, तभी तुम्हें मालूम होगा कि जीवन सौम्य एवं सुखमय है।

— एवेबरी

संसारकी सब बडी वस्तुयें छोटी वस्तुओंके समूहसे ही बनी हैं। जिसने छोटी वस्तुओंको अपने वशमें कर लिया है, बडी भी उसके ताबेमें हो जाती हैं। — जेम्स एलन

अपनी शक्ति भर कार्य करके अपना कर्तव्य पूरा करो, फिर धैर्य और शान्तिपूर्वक परिणामकी प्रतीक्षा करो।

— एवेबरी

शान्तिके स्वर्गमें विचरण करना चाहते हो तो 'ममत्व' पर विजय प्राप्त करो। — जेम्स एलन

कितने मनुष्य इसी ताकमें रहते हैं कि कोई शुभ संयोग उनके हाथ लग जाय, पर यह उनकी अज्ञानता है। संयोग स्वयं किसीके पास नहीं आता। उसे ढूंढो और मिलने पर उससे लाभ उठाओ। — एवेबरी

ज्यों ज्यों आवश्यकतायें कम होंगी शान्ति बढेगी।

— अज्ञात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाह्य तथा आंतरिक सत्ताका अवलोकन

(लेखिका— श्री माताजी, श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी – २)

······' बाह्य सत्ता एक खोलके समान है। सामान्य लोगोंमें यह खोल इतना कठोर एवं स्थूल होता है कि वे अपने अंदर स्थित भगवान्के प्रति जरा भी सचेतन नहीं होते। किंतु चाहे एक क्षणके लिये क्यों न हो, यदि आंतरिक सत्ता जाग जाय और यह कहे, ' मैं यहां हूं और मैं तुम्हारी हूं, ' तो एक सेतु सा बन जाता है और फिर धीरे धीरे खोल पतला होता जाता है और एक ऐसा दिन आता है जब कि दोनों भाग पूरी तरह परस्पर जुड जाते हैं और आंतरिक और बाह्य सत्ता एक हो जाती है।'

क्या तुमने अपनी सत्तामें एकता लानेके विषयमें कभी सोचा है? क्या तुमने कभी भी यह देखनेका कष्ट उठाया है कि एक समय तो तुम एक व्यक्ति होते हो और दूसरे समय एक और व्यक्ति, एक समय तुम एक काम करना चाहते हो और दूसरे समय तुम उसे नहीं कर सकते और यह भी कि तुम एक ऐसे व्यक्तित्वके सामने खडे होते हो जिसे तुम अपना कह सकते हो पर फिर भी तुम्हारे व्यक्तित्वके कई ऐसे भाग होते हैं, जिसका तुम्हें पता नहीं है। जो विभिन्न व्यक्तित्व मेरे अंदर हो सकते हैं उन्हें एक संयुक्त करनेका प्रयत्न तो मैंने कभी नहीं किया है, पर मैंने उन्हें एक दूसरेके सामने खडा करनेकी चेष्टा अवश्य की है। मैंने अच्छे व्यक्तित्वको बुरेके सामने खडा किया है पर अच्छे व्यक्तित्वमें इतनी सक्रियता मैंने कभी नहीं देखी कि वह बुरे व्यक्तित्वके साथ संघर्ष कर सके।

क्या तुमने यह कभी नहीं सोचा है कि अच्छे और बुरे' के विषयमें तुम्हारा निर्णय केवल एक विशुद्ध मानवी निर्णय भी हो सकता है। और वह आवश्यक नहीं है कि यह तुम्हारे अंदर स्थित भागवत उपस्थितिके निर्णयसे मेल खाये हो। जिन बुरी वस्तुओंसे तुम मुक्त नहीं हो सके वे शायद ऐसी वस्तुएं थीं जो अपने स्थान पर नहीं थीं, उनमें उस संतुलनका अभाव था जो उनमें होता था, और यदि वे चली जातीं तो वह तुम्हारे लिये एक दयनीय स्थिति हो जाती, क्योंकि तब शायद तुम्हारी शक्ति और भागवत उपस्थितिका एक भाग भी उसके साथ ही चला जाता। जो लोग किसी गुरुके निर्देशनमें योगका अभ्यास नहीं करते, वे साधारण नैतिक धारणाओंका अनुसरण करते हैं और कभी कभी परेशान भी हो जाते हैं, क्योंकि पूरी सद्भावनाके साथ भी वे प्रत्याशित फल प्राप्त करनेमें सफल नहीं होते। इसका कारण यह है कि वे अपनी सत्ताको रूपांतरित करनेके स्थान पर उसका अनुमोदन करने लगते हैं और यह भी कि नैतिक धारणाएं बहुत बुरी होती हैं। सत्ताके एकीकरणके लिये यह आवश्यक है कि तुममें इतनी कल्पनाशक्ति हो कि तुम अपनी उन गतिविधियोंको, जिन्हें तुम अपने अंदर रखना चाहते हो, उस वस्तुके आगे रख सको जिसकी तुम भागवत उपस्थितिकी ओर निकटतम मार्गके रूपमें कल्पना कर सकते हो। स्वभावतया ही आरंभमें यह केवल एक कल्पना ही होती है, एक ऐसी कल्पना जो सत्यसे कोसों दूर होती है, किंतु यह तुम्हें नैतिक प्रकारकी संकीर्णतासे और साथ ही तुम्हारी चेतनाकी सीमाओंसे उबारनेमें सहायता अवश्य प्रदान करेगी।

उदाहरणार्थ, तुम्हारे मनमें अपने वर्तमान स्वरूपकी ओर अपने कार्यको उस चेतनाके सामने रखनेका विचार उठा है जो असीम और नित्य दोनों है। शुरु शुरुमें इन दोनों शब्दोंका कुछ अधिक अर्थ नहीं होता, किंतु ये तुम्हें सीमाओंको तोडने और अपने आपको एक ऐसी वस्तुके सामने रखनेको विवश कर देते हैं जो सब दृष्टियोंसे तुमसे इतने आगेकी वस्तु होती है कि उसका निर्णय एक मानव मनके निर्णयके

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समान नहीं हो सकता। व्यक्तिको बिलकुल इसी तरहसे आरंभ करना चाहिये। यदि तुम नैतिक सिद्धांतोंके अनुसार विश्लेषण करनेकी चेष्टा करोगे तो तुम यह निश्चय रखो कि तुम भागवत योजनाके विरुद्ध जा रहे हो। याद रखो, भगवान् अनैतिक नहीं हैं, किंतु यह वैसी नैतिकता भी नहीं जैसी कि मनुष्य समझता है, यह बिलकुल वही चीज नहीं है।

(माताजी आगे पढती हैं) ······ महत्वाकांक्षा कितने ही योगियोंके नाशका कारण बनी है ··· एक योगीके बारेमें कहा जाता है कि उसे अद्‌भुत शक्तियां प्राप्त थी। एक दिन उसके शिष्योंने उसे निमंत्रित किया। भोजन एक लंबी और नीची चौकी पर परोसा गया था। शिष्योंने अपने गुरु पर यह दबाव डाला कि वह अपनी शक्तियोंका कोई चमत्कार दिखाये, वह जानता था कि ऐसा नहीं करना चाहिये, पर महत्वाकांक्षाका बीज उसके अंदर विद्यमान था, दूसरे शब्दोंमें- वह उसकी चेतनासे जडमूलसे नहीं गया था। उसने सोचा, ' अन्तमें यह है तो बडी निर्दोषसी बात और इनके सामने यह प्रमाणित भी हो जायगा कि ऐसी बात संभव है और इस प्रकार भगवान्‌की महानताके लिये इनमें आदर भाव बढेगा ही।' अतएव उसने अपने शिष्योंसे कहा, ' चौकीको हटा लो, पर चौकी पर बिछे कपडे और जो कुछ उस कपडे पर रखा है उसे बिना छुए। '

शिष्योंने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा ' यह असंभव है, सब कुछ नीचे गिर जायगा। ' गुरुने पुनः कहा, 'ऐसा ही करो।' चौकी हटा ली गई और चमत्कार सामने आ गया। चौकी पर बिछा करडा हवामें अटका रहा और खानेके बर्तन आदि उस पर वैसे ही रखे रहे मानो चौकी ही उन्हें अपने स्थान पर स्थिर रखे है। शिष्य आश्चर्यचकित रह गये। किंतु अचानक ही गुरु चौंक कर उठ खडा हुआ और यह चीखता हुआ बाहरकी ओर भागा, ' मैं आगेसे कभी शिष्य नहीं बनाऊंगा, धिक्कार है मुझे, मैंने अपने भगवान्‌को धोखा दिया है। '

यह एक ऐसा लोभ है जो प्रत्येक गुरुके सामने पग पग पर आता है, और इसका कारण बडा सीधा सा है— क्योंकि एक साधरण मनुष्यका, सामान्यतया भागवत शक्तियोंके साथ कोई संपर्क नहीं होता, उसे यह समझमें नहीं आता कि प्रकाश पूर्ण चेतना क्या है और इसलिये वह स्थूल प्रमाण चाहता है। उसकी इसी मांग पर अधिकतर धर्म आधारित है और कुछ कारणोंसे, जिन्हें मैं प्रत्यक्षतः ' राजनैतिक ' कह सकती हूं, उन्होंने अपने धर्मके मूलमें ऐसे कई चमत्कार रख दिये हैं जिन्हें उनके संस्थापकोंने किया था, साथ ही उन्होंने थोडे बहुत स्थूल रूपमें अज्ञानी मनुष्योंमें चमत्कारों को देखनेकी रुचि भी उत्पन्न कर दी है। ऐसे लोगोंको किसीकी दिव्य शक्तिमें विश्वास करनेके लिये चमत्कारोंकी आवश्यकता पडती है। यह एक बडा विलक्षण अज्ञान है, क्योंकि चमत्कार करनेके लिये किसी दिव्य शक्ति या दिव्य चेतना का होना बिलकुल भी आवश्यक नहीं है।

वस्तुतः उच्चतर क्षेत्रोंकी चेतनामें निवास करने और अन्य समस्त क्षेत्रोंकी मध्यवर्ती सत्ताके द्वारा ही प्रकृति पर कार्य करनेकी अपेक्षा प्राणिक जगत्‌की उस क्षुद्र सत्ताओंकी सहायतासे चमत्कार साधित करना कहीं अधिक सरल है जो इतनी स्थूल होती हैं कि वे भौतिक जगत्‌के संपर्कमें आ सकती हैं एवं उस पर कार्य कर सकती हैं। मानवी बुद्धिके अंदर यह कूट कूट कर भरा गया है कि किसी सत्ताके दिव्य होनेका प्रमाण यह है कि वह मृतको जिला दे, रोगोंको दूर कर दे और इसी प्रकारके कई और कार्य भी कर दे। (सिवा इसके कि वह मूर्खको बुद्धिमान् बना दे)

हां, तो मैं तुम्हें यह निश्चित आश्वासन देती हूं कि यह कोई प्रमाण नहीं है; यह बात केवल यह सिद्ध करती है कि इन ' गुरुओं ' का प्राणिक जगत्‌की शक्तियोंके साथ संबंध होता है और इन सत्ताओंकी सहायतासे वे कुछ विशेष चमत्कार भी कर सकते हैं, अन्य नहीं। और यदि कोई इसी आधार पर किसी व्यक्तिकी उच्चताको स्वीकार करता है, तो वह भारी भूल कर रहा होता है। स्वभावतया ही कुछ अन्य धर्म भी हैं जिनकी स्थापना उनके प्रवर्तकोंके साक्षात् ज्ञान पर हुई है। ये साक्षात् अनुभव उनके प्राप्त ज्ञानके थोडे बहुत सुखद प्रतिलेख होते हैं। यह एक उच्चस्तर की वस्तु अवश्य है, पर प्रमाण नहीं है।

अतएव मेरा निष्कर्ष यह है। मनुष्यकी प्रमाणोंके लिये मांग विकासके लिये जरा भी हितकर नहीं है। कारण, सच्ची दिव्य शक्तिने जगत्‌की व्यवस्था एक ऐसी योजनाके अनुसार की है जिसमें तर्क विरुद्ध ढंगसे किसी भी बातके होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। नहीं तो आरंभसे ही जगत् तर्क विरुद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता पर वह ऐसा नहीं है। मनुष्य अधिकतर इन दो बातोंमेंसे एक ही कल्पना करते हैं, पहली यह कि एक स्थूल जगत् है और वे स्वयं उसीके प्राणी हैं, सब कुछ वहींसे आता है, और उसीकी और वापिस लौटता है, सबका अंत भी उसीमें होता है— यह अविश्वासियोंके लिये है दूसरी विश्वासियोंके लिये है— अधिकतर विश्वासियोंके लिये— कि कोई सत्ता है जिसे भगवान् कहते हैं, एक भौतिक जगत् है और यह भौतिक जगत् भगवान्की रचना है, वे जानते हैं कि वे क्या करते हैं, या वे समझते हैं कि जो कुछ वे चाहते हैं उसे वे जानते भी हैं।

गडबडी तब होती है जब की व्यक्ति यह कहता है कि सब कुछ मनमाने ढंगसे होता है चाहे यह मनमानी प्राकृतिक हो या अति प्राकृतिक। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो यह जानते हैं कि विश्वमें अनंत स्तरोंकी परंपरा है और प्रत्येक स्तरका अपना सत्य है, जीवन है, अपना नियम है, उसकी अपनी नियति है और यह कि सृष्टि 'यूं ही, मनमाने ढंगसे नहीं बन गयी' वरन् यह चेतनाकी एक प्रकारकी अभिव्यक्ति है और प्रत्येक वस्तु अपनेसे पहले आनेवाली वस्तुके परिणाम स्वरूप विकसित हुई है।

मैं इस बातको अपनी ओरसे अधिकसे अधिक सरलतासे कर रही हूं फिर भी यह भाव प्रकाशन अपूर्ण हो, किंतु यदि मैं तुम्हें यथार्थ कहानी बताना चाहती हूं कि तुम मेरे निष्कर्ष को जान लो (मैं इसके बारेमें कई बार और काफी विस्तारसे कह चुकी हूं) वह यह है। इन असंख्य क्षेत्रोंमेंसे प्रत्येकका अपना अत्यंत तर्कसंगत नियतिवाद होता है— प्रत्येक वस्तु कारणसे परिणामकी ओर जाती हैं; किंतु ये सब जगत् चाहे विभिन्न प्रकारके हैं पर एक दूसरेसे अलग नहीं हैं, और कई बहुत सी ऐसी प्रक्रियाओंके द्वारा जिनका हम अध्ययन कर सकते हैं आंतरिक अथवा उच्चत्तर लोक निम्न अथवा बाह्यलोकोंसे जुडे हुए हैं तथा इन पर इतना कार्य करते हैं कि इनमेंमें पहले लोकोंकी नियति पिछले लोकोंकी नियतिको बदल देती है।

उदाहरणार्थ– यदि तुम विशुद्ध भौतिक क्षेत्रको ही लो और देखो कि कोई वस्तु अचानक ही भौतिक नियमोंको– विशुद्ध भौतिक नियमोंको बदल देती है तो तुम कहोगे कि यह एक चमत्कार है, क्योंकि एक स्तरकी नियति दूसरे क्षेत्रके हस्तक्षेपसे खंडित हो जाती है, किंतु सामान्यतः हम इसे चमत्कार नहीं कहते। उदाहरणार्थ, जब मानव–संकल्प हस्तक्षेप करके किसी वस्तुको बदलता है, तो तुम्हें यह बात बिलकुल स्वाभाविक लगती है, और इसका कारण यह है कि तुम बचपनसे इसके अभ्यस्त हो।

एक पत्थर अपनी नियतिके नियमके अनुसार नीचे गिरता है, किंतु उसके गिरनेको रोकने लिये तुममें संकल्पशक्ति है। तुम हाथ बढा कर उसे पकड लेते हो। हां तो तुम्हें इसे भी चमत्कार कहना चाहिये, पर तुम कहते नहीं, क्यों कि तुम इसके अभ्यस्त हो। (किंतु यदि चूहा या बिल्ली बोल सकते तो वह इसे चमत्कार ही कहते) याद रखो जिसे लोग चमत्कार कहते है उसके साथ भी यही बात है। वे इन बातोंको चमत्कार कहते हैं क्यों कि वे बिलकुल अज्ञ हैं, उन्हें उस संकल्प–शक्तिके, जो अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहती है और उस स्तरके जहां वह अभिव्यक्त होती है, बीचके क्रमोंका पता नहीं।

जब उनमें मानासिक या प्राणिक संकल्पशक्ति होती है तो उन्हें वस्तु बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होती है किंतु जब उच्चतर जगत्की संकल्प–शक्तिकी बात होती है— देवताओं अथवा उच्चतर सत्ताके जगत्की— जो अचानक तुम्हारी छोटीसी व्यवस्थाको उलट पुलट देती है तो वह तुम्हें चमत्कार प्रतीत होता है। किंतु चमत्कार केवल इसलिये कहलाता है क्योंकि तुम उन क्रमोंका अनुसरण नहीं कर सकते जिनके द्वारा वह घटना घटी है।

अतएव, यदि तुम सर्वोच्च संकल्प शक्तिको जो उच्चतम क्षेत्रोंसे आविर्भूत होती है— उसकी तर्कसंगत क्रियामें देखते और यदि तुम्हारा उसके विषयमें सतत ज्ञान होता तो वह तुम्हें पूर्णतया स्वाभाविक प्रतीत होती। तुम इसकी व्याख्या दो प्रकारसे कर सकते हो, या तो यह कहो, 'यह बिलकुल स्वाभाविक है, इस विशेष ढंगसे ही वस्तुओंको घटित होना चाहिये, यह केवल भागवत इच्छाकी एक अभिव्यक्ति है' या फिर ऐसे प्रत्येक समय जब तुम जगत्के स्तर पर दूसरे स्तरका हस्तक्षेप देखो तो तुम कहो, 'यह चमत्कार पूर्ण है।'

अतएव मैं निश्चयतापूर्वक यह कह सकती हूं कि जो लोग चमत्कार देखना चाहते हैं वे वे लोग हैं जो अपने अज्ञान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का पोषण करते हैं। तुम मेरे तर्कको समझते हो न ? ऐसे लोग अपने अज्ञानसे प्रेम करते हैं। वे पूर्णतया चमत्कार देखना चाहते हैं और आश्चर्यचकित हो जाना चाहते हैं। अतएव जिन लोगोंने योगका गंभीर रूपसे अभ्यास किया है वे इस प्रवृत्तिको उत्साहित करना हानिकारक समझते हैं, इसीलिये इसके करनेकी मनाही है।

इसे चमत्कार इसलिये कहा जाता है क्योंकि तुम अपने कार्यकी प्रक्रियाको दूसरोंको देखनेका अवकाश नहीं देते, उन्हें उसको क्रमिक अवस्थाओंका दिग्दर्शन नहीं कराते। इस प्रकार कुछ लोगोंको जो उच्चतर मानसिक क्षेत्रोंमें पहुंच चुके होते हैं विचारकी सभी श्रेणियोंका क्रमिक अनुसरण करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

वे विना मध्यवर्त्ती स्तरोंमेंसे गुजरे एक विचारसे दूरके परिणामतक शीघ्रतापूर्वक पहुंच सकते हैं। इसे ही सहज ज्ञान-की प्राप्ति कहा जाता है पर यह पूर्ण सहज ज्ञान ही नहीं है। इसका अर्थ यह है कि विचार अपने मूल स्रोतमें बहुत ऊंचाई पर स्थित है और यहांसे ये लोग, नीचे उतरते हुए, वस्तुओं और परिणामोंकी संपूर्ण समग्रताको देख सकते हैं; इस प्रक्रिया में वे उन सभी स्तरोंमेंसे नहीं गुजरते (जिनमेंसे कि सामान्य मानवविचारको गुजरना पडता है), यह अनुभव मुझे हो चुका है।

जब मैं श्री अरविन्दसे बात किया करती थी, तो हमें कभी भी मध्यवर्ती विचारोंमेंसे गुजरनेकी आवश्यकता नहीं पडती थी। वे एक बात कहते थे और मैं उसके दूरके परिणाम देख लेती थी। हम सदा ऐसे ही परस्पर बातें करते थे, और यदि कोई व्यक्ति वहां होता और हमारी बात सुनता तो वह कहता ' ये क्या बात कर रहें हैं। पर हमारे लिये वह एक पूरे और अविच्छिन्न वाक्यके समान स्पष्ट होता था। तुम इसे मानसिक चमत्कार कह सकते हो— पर यह चमत्कार नहीं था, बात केवल इतनी थी कि श्री अरविन्दको मानसिक तथ्यकी समग्रताके विषयमें दिव्यदृष्टि प्राप्त थी और इस-लिये हमें विभिन्न स्तरोंमेंसे गुजरनेके लिये बहुत समय नष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं थी। किसी भी ऐसे व्यक्तिके लिये जो हमारी विचार दिशाको जान सकता था यह वस्तु बिल-कुल ही स्वाभाविक और तर्कसंगत लगती थी, पर अज्ञानियोंके लिये यह चमत्कार था।

' ...... जिस प्रकार ये शक्तियां व्यक्तिके पास आती हैं, उसी प्रकार उसे उनका प्रयोग भी करना चाहिये। भगवान्के साथ संयुक्त होकर ही इनकी प्राप्ति हो सकती है। भागवत् इच्छाकी सेवामें ही इन्हें अर्पण करना चाहिये, लुके छिपे अंहकारकी सेवामें नहीं। '

जो शक्ति तुम्हारे पास है उसे तुम यदि प्रदर्शनके लिये प्रयुक्त करते हो तो उसमें मिथ्यात्वका इतना प्रवेश हो जाता है कि वह अंतमें नष्ट हो जाती है। किंतु यह बात बिलकुल ठीक नहीं है, क्योंकि, जैसा कि, मैं आरंभमें ही कह चुकी हूं, जब व्यक्ति ऐसी शक्तियोंका, उदाहरणार्थ रोग दूर करने या एक बाह्य वस्तुको पूर्णतया बदल देनेकी शक्तिका एक प्रति-कूल परिस्थितिको अनुकूल परिस्थितिमें बदल देने और खोई हुई वस्तुको पुनः प्राप्त करनेकी शक्तिका— प्रयोग करता है। अर्थात् जब ये छोटे छोटे अनगिनत ' चमत्कार ' किये जाते हैं जो तुम सभी धर्मोंमें देखते हो— तो इन्हें प्राणिक जगत्की सत्ताओंकी सहायतासे करना कहीं आसान होता है बल्कि अधिक प्रभावशाली भी होता है, यद्यपि वे सत्ताएं सदा उपादेय नहीं होती, वरन् उससे कोसों दूर होती हैं। तब उस अवस्थामें ये सत्ताएं तुम्हारी हंसी उडाती है। इस सबका आरंभ तो बडा अच्छा और दर्शनीय होता है पर अंत बुरा।

मैं एक ऐसे व्यक्तिकी कहानी जानती हूं जिसमें क्षमताएं तो बहुत कम थीं पर जो सभी प्रकारकी तथा कथित ' आध्या-त्मिक ' प्रक्रियाएं करनेका दम भरता था। सतत अभ्याससे वह एक ऐसी सत्ताके चेतन संपर्कमें आनेमें सफल हो गया था जिसे वह ' आत्मा ' कहता था। यह व्यक्ति व्यापारी एवं उद्योगपति था, सट्टा भी खेलता था। इस आत्माके साथ इसका संबंध बडे व्यावहारिक ढंगका था। आत्मा उसे वह बता दिया करती थी कि कब तो वस्तुओंके भाव गिरेंगे और कब बढेंगे।

वह उसे कहती, ' इसे बेच दो, ' ' उसे खरीद लो ' — वह उसे व्यवसाय संबंधी बडी ठीक सूचनाएं देती थी। सालों वह व्यक्ति इस आत्माकी आवाज सुनता रहा और वैसा ही करता रहा। उसे बडे रहस्यमय ढंगसे सफलता प्राप्त हुई। वह अत्यधिक धनी हो गया और सदा ही अपनी उस-' पथ प्रदर्शक ' आत्माके बारेमें ढींग मारा करता। वे सबसे कहता फिरता था, ' देखो तो, इन आत्माओंके साथ संपर्क

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधनेकी कला सीखनेके लिये कष्ट उठाना अच्छा ही रहता है।' किंतु एक दिन उसे अपनेसे एक अधिक बुद्धिमान् व्यक्ति मिला जिसने उससे कहा 'जरा सावधान रहना।' पर उसने उसकी बात नहीं सुनी, वह अपनी शक्ति और महत्त्वाकांक्षा से फूल उठा था। अब उसकी 'आत्मा' ने उसे एक अंतिम सलाह दी, 'अब तुम संसारके अत्यधिक धनी मनुष्य बन सकते हो, तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण हो जायगी। तुम्हें केवल मेरे निर्देशनके अनुसार चलना होगा। ऐसा करो, इस कार्यमें तुम अपना सर्वस्व लगा दो और तुम संसारके सर्वाधिक धनी व्यक्ति बन जाओगे।' वह मूर्ख यह भी नहीं समझ पाया कि उसके लिये एक जाल फैलाया जा रहा है। इतने वर्ष वह अपने पथदर्शकका अनुकरण करता रहा और सफल हुआ, इसलिये उसने उसकी अंतिम आज्ञा का भी पालन किया और उसने अपना सब कुछ लगा दिया, अंतिम पाई तक।

हां, तो तुम देखते हो कि वे क्षुद्र सत्ताएँ तुम्हारा उपहास करती हैं और तुम्हें विश्वास दिलानेके लिये ऐसे छोटे छोटे चमत्कार दिखाती हैं। ऐसा वे केवल तुम्हें प्रोत्सहित करनेके लिये करती हैं और जब उन्हें यह पता लग जाता है कि तुम पूर्णतया उसके जालमें फंस गये हो तो तुम्हारे साथ वे सुन्दर नाटक सा खेलती हैं और फिर सारा मामला खतम हो जाता है।

हम कह चुके हैं कि सुरक्षा केवल उसमें है कि भागवत-की अनुकुलतामें ही सब कार्य करने चाहिये। अब एक प्रश्न बाकी बचा है: यह कैसे जाना जाय कि भागवत इच्छा ही तुमसे कार्य करा रही है, जिस व्यक्तिने यह प्रश्न मुझसे पूछा था उसे मैंने उत्तर दिया (यद्यपि वह मेरे उत्तरसे सहमत नहीं हुआ) भगवान्की वाणीको पहचानना कठिन नहीं है, इसमें गलती नहीं हो सकती, उसे पहचाननेके लिये मार्ग पर बहुत आगेतक जानेकी आवश्यकता भी नहीं है। तुम्हें उस छोटी सी शांत और स्थिर आवाजको सुनना चाहिये जो तुम्हारे हृदयकी नीरवतामें बोलती है।

एक बात मैं भूल गई थी; उसे सुननेके लिये तुम्हें पूर्ण तथा सच्चा बनना चाहिये। कारण, यदि तुम सच्चे नहीं हो तो तुम शुरुसे ही अपनेको धोखा देने लगोगे, तुम अपने अहंकी वाणीके सिवाय और कुछ नहीं सुनोगे और तब तुम निश्चय-के साथ (यह सोचते हुए कि यह वही छोटी सी सच्ची आवाज है) अत्यधिक भयानक मूर्खताएं कर बैठोगे। किंतु यदि तुम सच्चे हो, तो मार्ग निश्चित है। यह एक आवाज भी नहीं है वेदना भी नहीं, यह एक अत्यधिक सूक्ष्म वस्तु है, एक संकेत मात्र।

जब सब कुछ ठीक चलता है, दूसरे शब्दोंमें, जब तुम भागवत इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करते, तब तुम्हें शायद कोई निश्चित आभास नहीं मिलता, सब कुछ तुम्हें सहज-स्वाभाविक सा प्रतीत होता है। हां, तुम्हें यह जाननेकी उत्सु-कता अवश्य होगी कि क्या तुम भागवत् इच्छाके अनुसार ही कार्य कर रहे हो, स्वभावतया यही वह पहली बात है जिसके बिना तुम कुछ नहीं जान सकते। किंतु एक बार जब तुममें उत्साह आ जाता है और तुम ध्यान देने लगते हो, सब कुछ तुम्हें सहज और स्वाभाविक प्रतीत होने लगता है, फिर अचानक ही तुम्हें कहीं जरा सी बेचैनी अनु-भव होने लगती है। मस्तिष्कमें या हृदयमें, कभी कभी पेटमें भी— सामान्यतया तुम इससे बच नहीं सकते। तुम इसे दिनमें कई बार अनुभव कर सकते हो और बिना इसकी ओर ध्यान दिये इसे अस्वीकार कर देते हो।

किंतु बैचेनी अब पहले जैसी नहीं रहती। तब उस समय जो काम भी तुम कर रहे हो, उसे बंद कर दो और अपना निरीक्षण करो, और यदि तुम सच्चे हो तो तुम्हें एक छोटासा काला धब्बा दिखाई देगा (एक छोटासा दुष्ट विचार, एक छोटीसी मिथ्या क्रिया एक छोटासा धूर्तता पूर्ण निश्चय) और यही उस व्याकुलताका स्रोत है। और तुम देखोगे कि यह छोटा काला धब्बा अहंसे आता है, जो कि रुचियों अभि रुचियोंसे भरा पडा है।

सामान्यतया वह वही करता है जो वह चाहता है, जिन वस्तुओंको वह पसंद करता है वे अच्छी समझी जाती हैं और जिन्हें वह नहीं पसंद करता वे बुरी मानी जाती हैं— और यह बात तुम्हारे निर्णयमें एक अस्तव्यस्तता उत्पन्न कर देती है। ऐसी अवस्थाओंमें निर्णय करना बहुत कठिन हो हो जाता है: यदि तुम सचमें जानना चाहते हो तो तुम्हें एक कदम पीछे हटकर देखना होगा और तब तुम जानोगे कि अहंकी यह क्षुद्र क्रिया ही तुम्हारी व्याकुलताका कारण है। तुम देखोगे कि वह यह एक बहुत छोटीसी वस्तु है जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने ऊपर ही केंद्रित हुई है। तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा कि तुम एक ऐसी कठोर वस्तुके आगे खडे हो जो काली है। तब धैर्यके साथ, अपनी चेतना की ऊंचाईसे, तुम्हें उस वस्तुको उसकी गलती समझा देनी चाहिये और तब अंतमें वह विलीन हो जायगी।

मैं यह नहीं कहती कि तुम्हें एकदम पहले ही दिन सफलता प्राप्त हो जायगी, किंतु यदि तुम सच्चाईके साथ प्रयत्न करते रहोगे तो अंतमें तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। और यदि तुम अध्यवसायपूर्वक लगे रहोगे, तो तुम देखोगे कि तुम अचानक ही उस ढेर सारी क्षुद्रता, कुरूपता और अंधकार से मुक्त हो गये हो जो तुम्हारे प्रकाशकी ओर उन्मुक्त होनेसे रोक रहे थे।

यही वस्तुएं तुम्हारे लिये अपने ऊपर ही केंद्रित होनेमें सहायक होती हैं और अपने आपको विशाल बनाने तथा उस प्रकाशमें जहां तुम्हें आरामका आभास मिलता है उन्मुक्त होनेसे रोकती हैं। यदि तुम इस प्रयत्नको करो तो अंतमें तुम देखोगे कि जिनसे तुमने आरंभ किया था उससे तुम बहुत दूर हो और जिन वस्तुओंको तुम पहले अनुभव नहीं कर रहे थे, नहीं समझ रहे थे वे अब स्पष्ट हो गयी है। यदि तुम अपने निश्चयमें पक्के हो तो तुम निश्चय ही सफल होगे।

अपनी सत्ताकी एकीकृत करनेके लिये एक ऐसी चेतन सत्ता बननेके लिये जिसके पास एक केंद्रीय संकल्प हो, जो इसी संकल्पके अनुसार कार्य करती हो और जो भागवत इच्छाकी एक सतत अभिव्यक्ति बन जाय, यही पहला पग है। इसके लिये प्रयत्न करना ही चाहिये।

और मैं तुम्हें अपने व्यक्तिगत अनुभवसे भी कहती हूं कि इस जगत्में इससे अधिक मनोरंजक वस्तु और कोई नहीं है। यदि तुम इस प्रयत्नको आरंभ करोगे तो तुम्हें पता लगेगा कि जीवनरससे परिपूर्ण है। साधारण लोगोंका जीवन, कमसे कम जीवनका तीसरा भाग तो मंद उकताहटसे भरा होता है। मैं तीसरा भाग कहती हूं, पर किन्हीं किन्हींके लिये दिनका दो तिहाई भाग ही इसी मंद उकताहटमें बीतता है, और वह सब बाष्प बन कर उड जाता है। किंतु अन्योंके लिये प्रत्येक वस्तु अत्यधिक रुचिकर हो उठती है छोटीसे छोटी वस्तु, छोटेसे छोटा मिलन, शब्दोंका आदान-प्रदान, किसी वस्तुका छोटेसे छोटा स्थानांतरण-सब कुछ जीवन और रससे परिपूर्ण हो उठता है।

(१) क्या आप भारतीय संस्कृतिका सच्चा स्वरूप जानना चाहते हैं ? (२) क्या आप रामराज्यकी रूपरेखा जाननेके अभिलाषी हैं ? (३) क्या आप भारतकी महिमा सुनना चाहते हैं ? (४) क्या आप भारतमाताके दर्शनके इच्छुक हैं ? और— (५) क्या आप देशभक्तिका मर्म जानना चाहते हैं ?

यदि हां !! तो

अवश्य पढिए। सुप्रसिद्ध लेखक श्री वेदव्रत शर्मा कृत

वेद-रत्नाकर

इसमें आपको हर भाग सच्चा मोती प्रतीत होगा। वेदोंके अथाह सागरमें डुबकी लगाकर लेखकने ६ मोतियोंको बाहर निकाला है।

जौहरी बनकर आप भी इनको परखिए। जिसने भी इसे पढा मुक्तकण्ठसे सराहा। मूल्य १.५० पै. (डा. व्य. पृथक्) आज ही लिखिए—

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८७६ अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ २ ॥
८७७ अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
८७८ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४ ॥
८७९ त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
८८० अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥ ६ ॥

(ऋ० ५। १४। १-६)

८८१ अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १ ॥

अर्थ—[८७६] (अद्य) आज (द्रविणस्यवः दिविस्पृशः देवस्य अग्नेः) धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग आकाशको छूनेवाले, प्रकाशमान् अग्निके (सिध्रं स्तोमं मनामहे) कामना सिद्ध करनेवाले स्तोत्रको बोलते हैं ॥ २ ॥

[८७७] (यः अग्निः मानुषेषु होता) जो अग्नि मनुष्योंके बीचमें स्थापित हुआ हुआ और देवोंको बुलानेवाला है, (सः नः गिरः जुषत) वह हम लोगोंकी स्तुतियोंको ग्रहण करे और (दैव्यं जनं आ यक्षत्) देवताओंके पास हविको सब ओरसे पहुँचावे ॥ ३ ॥

[८७८] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं जुष्टः वरेण्यः होता सप्रथाः असि) तू सर्वदा सेवन करने योग्य, अतिश्रेष्ठ होम निष्पादक और प्रसिद्ध यशवाला है। (त्वया यज्ञं वि तन्वते) तेरे द्वारा ही यज्ञका विस्तार किया जाता है ॥ ४ ॥

[८७९] हे (अग्ने) अग्ने ! (विप्राः वाजसातमं सुष्टुतं त्वां वर्धन्ति) बुद्धिमान् लोग, अन्नके दाता, उत्तम यशवाले तुझको स्तुतियोंसे बढाते हैं। (सः नः सुवीर्यं रास्व) वह तू हमको उत्कृष्ट बल प्रदान कर ॥ ५ ॥

[८८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (इव नेमिः अरान्) जिस प्रकार चक्रकी नाभिके चारों ओर अरे होते हैं, उसी प्रकार (त्वं देवान् परि भूरसि) तू देवोंको चारों ओरसे व्याप्त करता है। तू हम लोगोंको (चित्रं राधः आ ऋञ्जसे) नाना प्रकारका धन सब ओरसे प्रदान कर ॥ ६ ॥

(ऋ० ५। १४। १-६)

[८८१] हे मनुष्य ! (अमर्त्यं अग्निं) अविनाशी अग्निको (स्तोमेन बोधय) स्तोत्र द्वारा चैतन्य कर। वह (समिधानः नः हव्या देवेषु दधत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित होनेपर हमारे हव्योंको देवताओंमें स्थापित करे ॥ १ ॥

भावार्थ— अग्निको पूजा करते हुए हम अपने संरक्षणके लिए अग्निको बुलाते हैं और कामनाको सिद्ध करनेवाले स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

यह अग्नि सब प्राणियोंके पास देवोंको बुलाकर लाता और स्वयं भी अन्य देवोंके साथ मनुष्योंके अन्दर विराजता है वह अग्नि सब देवोंके पास उनका भाग पहुंचाता है और इस प्रकार सभी देवोंको वह पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

यह अग्नि मनुष्योंके बीचमें स्थित होकर देवोंको बुलाकर लाता है और इस प्रकार यज्ञका विस्तार करता है फिर उस यज्ञमें डाली गई हवियोंको वह देवोंतक पहुंचाता है ॥ ४ ॥

सब श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्य अन्नको देनेवाले तथा उत्तम यश देनेवाले इस अग्निको स्तोत्रोंसे बढाते हैं; तब वह प्रसन्न होकर अपने उपासकोंको बल प्रदान करता है। इस शरीरमें स्थित अग्निको अन्नादिसे पुष्ट करने पर शरीर भी पुष्ट होता है ॥ ५ ॥

ज्ञानी लोग इस सर्व व्यापक अग्निकी सब तरहसे स्तुति करते हैं और इस अग्निको बढाते हैं। तब यह प्रसन्न होकर उपासकोंको नाना तरहके धन देता है ॥ ६ ॥

हर मनुष्यको चाहिए कि वह अग्निको अच्छी तरह प्रज्वलित करे, क्योंकि अच्छी तरह प्रज्वलित होने पर वह डाली गई आहुतियोंको देवोंतक पहुंचाता है ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८८२ तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २ ॥
८८३ तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३ ॥
८८४ अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्दद् गा अपः स्वः ॥ ४ ॥
८८५ अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ ॥
८८६ अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ ॥

(ऋ० ५।१५।१-५) धरुण आङ्गिरसः। त्रिष्टुप्।

८८७ प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ—[८८२] (मर्ताः) मनुष्यगण, (देवं अमर्त्यं मानुषे जने यजिष्ठं तं) दिव्यगुण युक्त, अमर और मनुष्योंके मध्यमें परम पूजनीय उस अग्निकी (अध्वरेषु ईळते) यज्ञोंमें स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[८८३] यज्ञ स्थलमें (शश्वन्तः घृतश्चुता) बहुतसे स्तोतागण घृत गिरते हुये स्रुवाके साथ (हव्याय वोढवे हि) हव्यको देवों तक पहुंचानेके लिये निश्चयसे (तं देवं अग्निं ईळते) उस दिव्यगुणयुक्त अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[८८४] (जातः अग्नि) उत्पन्न अग्नि अपने (ज्योतिषा तमः दस्यून् घ्नन् अरोचत) तेजसे अन्धकार और शत्रुओंको विनष्ट करता हुआ प्रकाशित हुआ और उसने (गाः अपः स्वः अविन्दत्) किरण, जल और सुख इन तीनोंको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

[८८५] हे मनुष्यो ! तुम उस (ईळेन्यं कविं घृतपृष्ठं अग्निं सपर्यत) प्रशंसा करने योग्य, ज्ञानी और तेजस्वी ज्वालावाले अग्निकी सेवा करो । वह अग्नि (मे हवं शृणवत्, वेतु) मेरे इस आह्वानको सुने और मेरी इच्छाको जाने ॥ ५ ॥

[८८६] ऋत्विक्गण (घृतेन स्तोमेभिः) घृतसे और स्तोत्रोंके द्वारा (वचस्युभिः, स्वाधीभिः) स्तुतिके अभिलाषी और ध्यानगम्य देवोंके साथ, (विश्वचर्षणिं अग्निं वावृधुः) संसारको प्रकाशित करनेवाले अग्निको बढाते हैं ॥ ६ ॥

(ऋ० ५।१५।१-५)

[८८७] (अग्निः घृतप्रसत्तः) अग्नि हविरूपघृतसे प्रसन्न होता है। यह (असुरः सुशेवः रायः धर्ता धरुणः वस्वः) बलवान्, सुखस्वरूप, धनका पोषक, हविको धारण करनेवाला और गृहका प्रदाता है । ऐसे (कवये यशसे पूर्व्याय, वेद्याय, वेधसे गिरं प्रभरे) दूरदर्शी, यशस्वी, श्रेष्ठ, जानने योग्य और बुद्धिमान् अग्निके लिये मैं स्तुति और प्रार्थना करता हूँ । ॥ १ ॥

भावार्थ— वह अग्नि दिव्य गुण युक्त, अमर और मनुष्योंके बीचमें अत्यन्त पूज्य है, अतः सब उसकी स्तुति करते हैं। उसी प्रकार जो मनुष्य दिव्य गुण युक्त है, वह सबके द्वारा पूज्य होता है और सब उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

यह अग्नि दूतका काम करता है और यज्ञकर्ताओंकी प्रार्थना और हवियोंको देवोंतक पहुंचाता है, इसलिए सब उसकी स्तुति करते हैं। दूतकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अग्निके प्रकाशित होते ही अन्धकार और रोगादिके जन्तु आदि शत्रु नष्ट हो जाते हैं। तब उसकी किरणोंसे पानी बरसता है और सभी मनुष्य सुख पाते हैं ॥ ४ ॥

यह अग्नि प्रशंसनीय, ज्ञानी और तेजस्वी है, ऐसी अग्निकी सेवा सभी मनुष्योंको करनी चाहिए । वह अग्नि मनुष्योंकी प्रार्थना सुनता है और उनकी इच्छाओंको समझता है ॥ ५ ॥

सर्वव्यापक होनेसे यह अग्नि सब कुछ देखता है। यह ध्यानके द्वारा देखने योग्य है, ऐसे अग्निको सब ऋत्विज बढाते हैं ॥ ६ ॥

वह अग्नि (असु-रः) प्राणोंको बलवान् बनानेवाला, सुख प्रदाता, धनको धारण करनेवाला और सबको बसानेवाला है। वह भविष्यकी बातोंको भी जाननेवाला, यशस्वी तथा श्रेष्ठ है। ऐसे गुणोंसे युक्त मनुष्यकी पूजा होती है ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८८८ ऋतेन॑ ऋतं ध॒रुणं॑ धारयन्त य॒ज्ञस्य॑ शा॒के प॑र॒मे व्यो॑मन् ।
दि॒वो धर्म॑न् ध॒रुणे॑ से॒दुषो॒ नॄ॒ञ्जा॒तैर॒जा॑ताँ अ॒भि ये न॑न॒क्षुः ॥ २ ॥

८८९ अं॒हो॒युव॑स्त॒न्व॑स्तन्वते॒ वि वयो॑ म॒हद् दु॒ष्टरं॑ पू॒र्व्याय॑ ।
स सं॒वतो॒ नव॑जातस्तुतुर्यात् सिं॒हं न क्रु॒द्धम॒भित॒: परि॑ ष्ठुः ॥ ३ ॥

८९० मा॒तेव॒ यद् भर॑से पप्रथा॒नो जनं॑जनं॒ धाय॑से॒ चक्ष॑से च ।
वयो॑वयो जर॒से यद् दधा॑न॒: परि॒ त्मना॑ विषु॑रूपो जिगासि ॥ ४ ॥

८९१ वाजो॒ नु ते॒ शव॑सस्पा॒त्वन्त॑मु॒रुं दो॒घं ध॒रुणं॑ देव रा॒यः ।
प॒दं न ता॒युर्गुहा॒ दधा॑नो म॒हो रा॒ये चि॒तय॒न्नत्रि॑मस्पः ॥ ५ ॥

अर्थ— [८८८] (ये) जो मनुष्य (दिवः धरुणे धर्मन् सेदुषः, नॄन् अजातान्) द्युलोकके धारक, प्रतिष्ठित धर्ममें लगे हुये, नेता रूप अमर देवगणको (जातैः अभिननक्षुः) ऋत्विजों द्वारा अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, वे (यज्ञस्य धरुणं ऋतं शाके परमे व्योमन्) यज्ञके धारक सत्यस्वरूप अग्निको यज्ञके लिये उत्तम स्थान पर (ऋतेन धारयन्त) स्तोत्र द्वारा स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

[८८९] जो मनुष्य (पूर्व्याय महत् दुष्टरं, वयः) श्रेष्ठ अग्निके लिये, अन्यों द्वारा अत्यधिक कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्न प्रदान करता है, (तन्वः अंहोयुवः वि तन्वते) उसका शरीर पापसे रहित होकर बढता है । (स नवजातः क्रुद्धं सिंहं न) वह नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंहकी तरह (संवतः अभितः तुतुर्यात्) इकट्ठे हुये हुए हमारे शत्रुओंको सब ओरसे नष्ट करे । तथा (परि स्थुः) सर्वत्र वर्तमान अन्य शत्रुओंको भी हमसे दूर करे ॥ ३ ॥

१ पूर्व्याय दुस्तरं वयः अंहोयुवः वि तन्वते— जो इस श्रेष्ठ अग्निके लिए अन्यों द्वारा कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्नको प्रदान करता है, वह पापसे छूटकर वृद्धिको प्राप्त होता है ।

[८९०] हे अग्ने (पप्रथानः) सर्वत्र प्रख्यात तू (यत् माता इव जनं जनं भरसे) माताकी तरह प्रत्येक जनका पोषण करता है । (धायसे च चक्षसे) धारण करनेके लिये और ज्ञानके लिये सबके द्वारा स्तुत होता है (यत् दधानः वयः वयः जरसे) जब प्रज्वलित होता है, तब सारे अन्नोंको जीर्ण कर देता है । और (विषुरूपः त्मना परि जिगासि) नाना रूप होकर अपनी शक्तिसे सब जगह व्याप्त होता है ॥ ४ ॥

[८९१] हे (देव) दिव्य गुण युक्त अग्ने ! (उरुं दोघं रायः धरुणं वाजः ते अन्तं शवसः नु पातु) अत्यधिक कामनाओंके पूरक, धनके धारक हविरूप अन्न तेरे सम्पूर्ण बलकी उसी प्रकार रक्षा करे जिस प्रकार (तायुः न गुहा पदं दधानः) तस्कर गुहाके मध्यमें छिप कर धनको धारण करता है, (महः राये चितयन्, अत्रिं अस्पः) प्रचुर धन लाभके लिये सन्मार्गको प्रकाशित कर और पालन करनेवालेको प्रसन्न कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रथम मनुष्योंने द्युलोकको धारण करनेवाले, धार्मिक, उत्तम मार्ग पर ले जानेवाले अमर अग्निका पता लगाया, फिर उस यज्ञका सम्पादन करनेवाले अग्निको यज्ञ करनेके लिए उत्तम स्थान पर मंत्रों द्वारा स्थापित किया ॥ २ ॥

जो इस श्रेष्ठ अग्निको उत्तमसे उत्तम अन्न प्रदान करता है, वह निष्पाप होकर बढता है और वह अग्नि क्रोधित सिंहकी तरह भयंकररूपसे प्रज्ज्वलित होकर उसके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ३ ॥

यह सर्वत्र विस्तृत अग्नि माताके समान प्रत्येक मनुष्यका पालन करता है । पुष्टि और ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए सब इसकी स्तुति करते हैं । जब प्रज्वलित होता है तब यह सब आहुतियोंको जला देती है और उस जली हुई आहुतिको सब जगह फैलाता है ॥ ४ ॥

यज्ञमें दी जानेवाली आहुति ऐसी पवित्र और उत्तम हो कि उससे अग्निका बल और सामर्थ्य बढे । यज्ञमें दी जानेवाली हवि खराब न हो । प्रज्ज्वलित होने पर अग्नि उत्तम मार्गको प्रकाशित करता है और पालक मनुष्यको आनन्दित करता है ॥ ५ ॥

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।१६।१-५) पूरुरात्रेयः। अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः।

८९२ बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥

८९३ स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः।
वि हव्यमग्निरानुषग् भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

८९४ अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः।
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३ ॥

८९५ अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना।
तमिद् यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥

(ऋ० ५।१६।१-५)

अर्थ— [८९२] (मर्तासः यं मित्रं न प्रशस्तिभिः पुरः दधिरे) मनुष्यगण जिस अग्निको मित्रकी तरह प्रकृष्ट स्तुतियों द्वारा सबसे आगे स्थापित करते हैं। उस (देवाय भानवे अग्नये हि बृहद्वयः अर्च) दिव्यगुण युक्त और प्रकाशमान् अग्निके लिये महान् हविरूप अन्न प्रदान करके उसकी पूजा करो ॥ १ ॥

[८९३] जो (अग्निः आनुषक् हव्यं) अग्नि देवोंके लिये अनुकूलतासे हव्यको वहन करता है। जो (बाह्वोः दक्षस्य द्युभिः) अपनी भुजाओंके बलके अत्यधिक तेजोंसे युक्त है (जनानां होता सः भगः न वारं वि ऋण्वति) मनुष्योंका होता वह अग्नि हम लोगोंको सूर्यकी तरह श्रेष्ठ सम्पत्ति प्रदान करता है ॥ २ ॥

[८९४] जो ऋत्विक्गण (तुविष्वणि यस्मिन् अर्ये शुष्मं सं आदधुः) अत्यधिक शब्द करनेवाले जिस श्रेष्ठ अग्निमें बलको स्थापित करते हैं (अस्य वृद्धशोचिषः मघोनः सख्ये स्तोमे) इस बढी हुई कान्तिवाले और बहु धनसे युक्त अग्निकी मित्रता और स्तुतिमें रहकर हम (विश्वा) सम्पूर्ण सुख प्राप्त करें ॥ ३ ॥

[८९५] हे (अग्ने) अग्ने! (अध एषां सुवीर्यस्य मंहना) अनन्तर इन मनुष्योंको तुम श्रेष्ठ बलसे युक्त करो। (न यह्वं रोदसी परिबभूवतुः) जैसे महान् सूर्यके सहारे ये पृथ्वी और आकाश स्थित हैं उसी प्रकार (श्रवः तं इत्) सारे अन्न और धन उसीके आश्रयसे स्थित हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार मित्र अपने मित्रसे स्नेह करता है और हमेशा अपने मित्रको आगे बढानेका प्रयत्न करता है, उसी तरह मनुष्य इस अग्निको सबसे आगे रखते हैं और उसका हर तरहसे सम्मान करते हैं ॥ १ ॥

इस सूर्यमें अनेक प्रकारकी सम्पत्तियां हैं, जिन्हें यह सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब प्राणियोंको प्रदान करता है, उसी प्रकार इस अग्निकी किरणोंमें अनेक तरहकी शक्तियां रहती हैं, वे सभी शक्तियां उपासक अग्निसे प्राप्त करता है ॥ २ ॥

जब मनुष्य इस अग्निको आहुति आदि देकर पुष्ट करते हैं, और यह बडे शब्दके साथ जलने लगता है, तब इस बढी हुई कान्तिवाले अग्निकी उपासनासे मनुष्य सब सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार पृथ्वी और द्युलोक सूर्यके आकर्षणसे अपने अपने स्थान पर स्थित हैं, उसी प्रकार सब अन्न इसी अग्निके सहारे टिके हुए हैं। अन्न इसी अग्निके कारण उत्पन्न होते हैं। उस अन्नको खाकर मनुष्य बलशाली होते हैं ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८९६ नू न एहि वार्य॑मग्ने गृणान आ भ॑र ।
ये व॒यं ये च॑ सू॒रय॑: स्व॒स्ति धाम॑हे सचा उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥ ५ ॥

(ऋ० ५। १७। १-५) अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः।

८९७ आ य॒ज्ञैर्दे॑व॒ मर्त्य॑ इ॒त्था तव्यां॑समू॒तये॑ ।
अ॒ग्निं कृ॒ते स्व॑ध्व॒रे पू॒रुरी॑ळी॒ताव॑से ॥ १ ॥

८९८ अस्य॒ हि स्वय॑शस्तर आ॒सा वि॑धर्म॒न् मन्य॑से ।
तं नाकं॑ चि॒त्रशो॑चिषं म॒न्द्रं प॒रो म॑नी॒षया॑ ॥ २ ॥

८९९ अ॒स्य वा॒सा उ॑ अ॒र्चिषा॒ य आयु॑क्त तु॒जा गि॒रा ।
दि॒वो न यस्य॒ रेत॑सा बृ॒हच्छोच॑न्त्य॒र्चय॑: ॥ ३ ॥

अर्थ— [८९६] हे (अग्ने) अग्ने ! हम सब तेरी (गृणानः) स्तुति करते हैं। (नु एहि) शीघ्र ही हमारे यज्ञमें आ। और (नः वार्यं आभर) हमारे लिये श्रेष्ठ धन भरपूर दे। (ये वयं च ये सूरयः सचा स्वस्ति धामहे) जो हम और जो विद्वान् स्तोता हैं वे सब मिलकर कल्याणको धारण करें (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और युद्धोंमें हम लोगोंको बढानेके लिए तू स्वयं भी बढ ॥ ५ ॥

(ऋ० ५। १७। १-५)

[८९७] हे (देव) देव ! (मर्त्यः इत्था तव्यांसं अग्निं ऊतये यज्ञैः आ) मनुष्य इस प्रकार तेजस्वी अग्निको स्वरक्षाके लिये सम्मानपूर्वक बुलाता है। और (पूरुः कृते सु अध्वरे अवसे ईळीत) मनुष्य आरम्भ किए हुए शोभन अहिंसामय यज्ञमें, अपनी रक्षाके लिए अग्निकी स्तुति करता है ॥ १ ॥

[८९८] हे (विधर्मन्) धर्मका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ! (स्वयशस्तरः) अत्यन्त श्रेष्ठ यशवाला तू (मन्द्रं, चित्रशोचिषं, नाकं परः तं अस्य) आनन्द देनेवाले, अद्भुत प्रकाशवाले, दुःखसे रहित, श्रेष्ठ उस प्रसिद्ध अग्निकी (हि मनीषया आसा मन्यसे) निश्चयसे प्रकृष्ट बुद्धिपूर्वक वाणीसे स्तुति कर ॥ २ ॥

[८९९] (यः तुजा आयुक्तः) जो अग्नि बलसे और स्तुतिसे सामर्थ्ययुक्त होता है। जो (दिवः न) प्रकाशमान् आदित्यकी तरह द्योतमान है। (यस्य) जिसकी (बृहत् अर्चयः) बडी ज्वालाएं (रेतसा) तेजसे प्रकाशित होती हैं ऐसे (अस्य अर्चिषा असौ उ) इस अग्निकी प्रभासे ही यह मनुष्य तेजस्वी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तेरी हम स्तुति करते हैं अतः तू शीघ्र हमारे पास आ और हमें श्रेष्ठ धन भरपूर दे। हम सब संगठित होकर तेरी स्तुति करते हैं अतः हम सबका कल्याण हो और युद्धोंमें भी हमारी उन्नति हो ताकि हम धन धान्यसे समृद्ध होकर तुझे भी तुष्ट कर सकें ॥ ५ ॥

हे तेजस्वी देव ! यज्ञके आरंभ होने पर मनुष्य इस अग्रणीका अपनी रक्षाके लिए उपासना करता है और इसे सम्मान पूर्वक अपने पास बुलाता है ॥ १ ॥

वह अग्नि आनन्द देनेवाला, अत्यन्त सुन्दर ज्वालाओंवाला, दुःखसे रहित और श्रेष्ठ है, इसलिए बुद्धिपूर्वक उसकी उपासना करनेवाला धार्मिक और श्रेष्ठ यशसे युक्त होता है ॥ २ ॥

यह अग्नि तेज और सामर्थ्यसे युक्त है। सूर्य जैसे अपनो किरणोंसे सबको शक्ति देता है, उसी तरह अग्नि भी अपने तेजसे सब प्राणियोंको तेज प्रदान करता है, जिस मनुष्यमें अग्नि जितना सामर्थ्यशाली होगा, उतना ही वह मनुष्य तेजोवान् होगा ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९०० अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्यो॑ऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

९०१ नू न इद्धि वार्यम् आसा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

(ऋ० ५।१८।१-५) द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः। अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः।

९०२ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

९०३ द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित् ते अमर्त्य ॥ २ ॥

अर्थ— [९००] (विचेतसः) सुन्दर मतिवाले बुद्धिमान् जन, (दस्मस्य अस्य क्रत्वा वसु रथ आ) दर्शनीय इस अग्निका यज्ञमें सत्कार करके धन और रथ सब ओरसे प्राप्त करते हैं। (अध हव्यः अग्निः विश्वासु विक्षु प्रशस्यते) इसके बाद यज्ञार्थ बुलाये जानेवाला यह अग्नि सम्पूर्ण प्रजाओंमें विशेष रूपसे प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥

[९०१] हे अग्ने ! जिस धनको (सूरयः आसा सचन्त) स्तोता लोग मुंहसे स्तोत्र बोलकर प्राप्त करते हैं। (वार्यं नः नु इद्धि) वह वरणीय धन हम लोगोंको शीघ्र ही प्रदान कर। हे (ऊर्जः नपात्) बलके पुत्र! हमें (अभिष्टये पाहि) अभिलषित प्रदान करके हमारी रक्षा कर। हमें (स्वस्तये शग्धि) कल्याणके लिए समर्थ कर (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और संग्राममें उपस्थित रहते हुये हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिए तू भी वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

(ऋ० ५।१८।१-५)

[९०२] (अमर्त्यः यः मर्तेषु विश्वानि हव्या रण्यति) अमरणशील जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें प्रतिष्ठित होकर सम्पूर्ण हव्योंकी कामना करता है वह (अग्निः पुरुप्रियः) अग्नि बहुतोंका प्रिय (विशः आतिथिः) सर्वत्र व्यापक, अतिथिके समान सत्कारके योग्य और (प्रातः स्तवेत) प्रातःकालमें स्तुति किए जाने योग्य है ॥ १ ॥

[९०३] हे (अमर्त्य) अमर अग्ने ! (मृक्तवाहसे द्विताय स्वस्य दक्षस्य मंहना) पवित्र हवि पहुँचानेवाले द्वितको अपने बलसे महत्त्व युक्त कर। क्योंकि (सः ते आनुषक् इन्दुं धत्ते, स्तोता चित्) वह तेरे लिये अनुकूलतासे सदा ही सोमरस देता है, और तेरी पूजा करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य इस अग्निका सत्कार करके सब तरहका धन और रथ प्राप्त करते हैं। उत्पन्न होनेके बाद यह अग्नि सब प्रजाओंमें अत्यधिक प्रशंसित होता है। जो इस अग्निका सत्कार करता है, वह हर तरहसे समृद्ध होता है ॥ ४ ॥

बुद्धिमान् जन अग्निकी उपासना करके उत्तम और श्रेष्ठ धन प्राप्त करते हैं। अग्निसे सम्पत्ति प्राप्त करनेका एकमात्र मार्ग उसकी उपासना है। हमारे अन्दर जो सामर्थ्य हो, वह लोगोंका कल्याण करनेके लिए ही हो। वह अग्रणी स्वयं भी सामर्थ्यशाली होकर युद्धोंमें हमें भी बढाए ॥ ५ ॥

यह अग्नि स्वयं अमर होता हुआ मरणशील मनुष्योंके अन्दर रहता हुआ उन्हें बलवान् और सामर्थ्यशाली बनाता है। इसीलिए वह सभीके लिए प्रिय और अतिथिके समान पूज्य है, उसकी प्रातःकाल स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

अमर अग्ने ! तू सदा स्तुति करनेवाले और सोमरस देनेवाले, दोनों प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न तथा उत्तम हवि देनेवाले मनुष्यको अपने सामर्थ्यसे सर्वश्रेष्ठ बना (द्वितय-दो प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न, शारीरिक और आध्यात्मिक।) ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९०४ तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

९०५ चित्रा वा येषु दीधिति-रासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

९०६ ये मे पञ्चाशतं ददु-रश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥ ५ ॥

(ऋ० ५।१९।१-५) वव्रिरात्रेयः। १-२ गायत्री, ३-४ अनुष्टुप्; ५ विराड्रूपा।

९०७ अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥

अर्थ— [९०४] हे (अश्वदावन्) अश्वदाता अग्ने! (दीर्घायुशोचिषं तं वः मघोनां गिरा हुवे) दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले तथा तेजस्वी उस तुझको स्तुति द्वारा बुलाता हूँ। जिससे (येषां रथः अरिष्टः वि ईयते) जो वीर हैं, उनका रथ शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर युद्धमें विशेष रूपसे बढता जाये ॥ ३ ॥

[९०५] (येषु चित्रा दीधितिः) जिन ऋत्विजोंमें अनेक प्रकारके तेज होते हैं। (ये आसन् उक्था पान्ति) जो मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं वे यज्ञशील (स्वर्णरे स्तीर्णे बर्हिः परि श्रवांसि दधिरे) स्वर्ग प्रापक यज्ञमें फैले हुये कुशोंके ऊपर अनेक प्रकारके अन्न अग्निके लिये स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

१ येषु चित्रा दीधितिः— यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते हैं।

२ आसन् उक्था पान्ति— वे ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं।

[९०६] हे (अमृत अग्ने) अमर अग्ने! (सधस्तुति ये मे पञ्चाशतं अश्वानां ददुः) तेरी स्तुतिके साथ जो धनदाता मुझे पचास घोडोंको प्रदान करते हैं, तू उन (मघोनां नृणां द्युमत् बृहत् नृवत् महि श्रवः कृधि) धनिक मनुष्योंको तेजस्वी और बहुत सेवकोंसे युक्त यशस्वी अन्न प्रदान करो ॥ ५ ॥

(ऋ० ५।१९।१-५)

[९०७] (वव्रिः मातुः उपस्थे विचष्टे) वह अदृश्य अग्नि माता अरणीके समीप स्थित होकर सबको भली प्रकार देखता है और (चिकेत) सब कुछ जानता है, (वव्रेः अवस्थाः अभि प्रजायन्ते) जब वह अदृश्य अग्नि प्रकट होता है तब उसकी अनेक अवस्थायें होती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अश्वको देनेवाले अग्ने! मैं तुझे स्तुति द्वारा बुलाता हूँ ताकि तू अपने तेजसे हमारे वीरोंकी आयु दीर्घ कर सके और युद्धमें आगे जानेवाले उनके रथोंको शत्रु नष्ट न कर सकें ॥ ३ ॥

जो ब्राह्मण अनेक तेजोंसे युक्त है और वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ करके वेदमंत्रोंकी रक्षा करते हैं वे यज्ञमें अग्निको देनेके लिए अनेक प्रकारके अन्नोंको तैय्यार करते हैं ॥ ४ ॥

जो अग्निके उपासकोंको गौ आदि धन प्रदान करते हैं, वे भी अग्निसे अनेक तरहका महत्वपूर्ण धन प्राप्त करते हैं ॥५॥

वह अदृश्य अग्नि अपनी माता अरणीके गर्भमें रहकर सभी कुछ देखता है और जानता है जब वह प्रकट होता है, तब शरीराग्नि, भौतिकाग्नि, सूर्य आदि रूपोंमें उसकी अनेक अवस्थायें हो जाती हैं ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९०८ जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

९०९ आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद् वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥

९१० प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥

९११ क्रीळन् नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन् धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [९०८] हे अग्ने ! (वि चितयन्तः अनिमिषं जुहुरे) तेरे प्रभावको जानकर जो लोग सर्वदा तुझमें आहुति डाला करते हैं और तेरे (नृम्णं पान्ति) बलकी रक्षा करते हैं । वे लोग (दृळहां पुरं आ विविशुः) शत्रुओंके दृढ नगरको भी तोड करके उसमें सब ओरसे प्रवेश कर जाते हैं ॥ २ ॥

[९०९] (बृहदुक्थः वाजयुः निष्कग्रीवः जन्तवः कृष्टयः) महान् स्तोत्र करनेवाले, अन्नाभिलाषी, सुवर्णके अलंकारोंको कंठमें धारण करनेवाले उत्पन्नशील मनुष्य (मध्वा न एना श्वैत्रेयस्य द्युमत् आ वर्धन्तः) शहद सदृश मीठे इन अपनी स्तुतियोंसे अत्यधिक प्रकाशमान् अग्निके तेजस्वी बलको सब ओरसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

[९१०] जो अग्नि ! (घर्मः न, वाजजठरः अदब्धः शश्वतः दमः) यज्ञके समान, हवि अन्नको अपने अन्दर रखनेवाला, तथा शत्रुओं द्वारा स्वयं अहिंसित होकर शत्रुओंकी हिंसा करनेमें समर्थ है (जाम्योः सचा दुग्धं काम्यं अजामि प्रियं) आकाश और पृथ्वीका सहायक वह अग्नि दूधके समान चाहे जाने योग्य दोषोंसे रहित हमारे प्रिय स्तोत्रको सुने ॥ ४ ॥

[९११] हे (रश्मे) प्रदीप्त अग्ने ! (क्रीळन् वायुना भस्मना सं वेविदानः नः आ भुवः) प्रदीप्त होता हुआ और वायुसे उडाई गई राखके द्वारा भली भांति ज्ञात होनेवाला तू हमारी तरफ ध्यान दे । तेरे (वक्षणेस्थाः वक्ष्यः सुसंशिता धृषजः) अन्दर स्थित ज्वालायें जो सुतीक्ष्ण और शत्रुनाशक हैं (ताः अस्य तिग्माः न सन्) वे ज्वालायें इस मेरे लिये तीक्ष्ण न हों अर्थात् शीतल हों ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस अग्निमें जो प्रतिदिन आहुति प्रदान करते हैं, और अग्निको पुष्ट करते हुए उसके बलकी रक्षा करते हैं, वे उस अग्निकी सहायतासे शत्रुओंके दृढसे दृढ नगरको भी तोडकर उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

महान् स्तुति करनेवाले अन्नकी इच्छा करनेवाले अलंकारोंसे सजे धजे मनुष्य उत्तम स्तुतियोंसे इस अग्निके बलको सब ओरसे बढाते हैं । मनुष्यको हमेशा शहदके समान मीठी वाणी ही बोलनी चाहिए ॥ ३ ॥

यह अग्नि हर तरहके अन्नको अपने अन्दर धारण करता है और शत्रुओं द्वारा स्वयं अहिंसित होकर शत्रुओंका नाश करता है, ऐसा अग्नि हमारी स्तुतियोंको सुने । स्तुति हमेशा दोषोंसे रहित और दूधके समान सुन्दर हो ॥ ४ ॥

जब अग्नि जलता है, तब उसकी राख इधर उधर हवामें उडती है, उसके द्वारा अग्निका जलना ज्ञात होता है । उस अग्निकी ज्वालाएं रोगरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाली है, इसकी जो उपासना करता है, वह कभी रोगोंसे पीडित नहीं होता ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।२०।१-४) प्रयस्वन्त आत्रेयाः। अनुष्टुप्, पङ्क्तिः।

९१२ यम॑ग्ने वाजसातम॒ त्वं चि॒न्मन्य॑से र॒यिम्।
तं नो॑ गी॒र्भिः श्र॒वाय्यं॑ देव॒त्रा प॑नया॒ युज॑म् ॥ १ ॥

९१३ ये अ॑ग्ने॒ नेरय॑न्ति ते वृ॒द्धा उ॒ग्रस्य॒ शव॑सः।
अप॒ द्वेषो॒ अप॒ ह्वरो॒ऽन्यव्र॑तस्य सश्चिरे ॥ २ ॥

९१४ होता॑रं त्वा वृणीम॒हेऽग्ने॒ दक्ष॑स्य॒ साध॑नम्।
य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं गि॒रा प्रय॑स्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

९१५ इ॒त्था यथा॑ त ऊ॒तये॒ सह॑सावन्दि॒वेदि॑वे।
रा॒य ऋ॒ताय॑ सुक्रतो॒ गोभिः॑ ष्याम सध॒मादो॑ वी॒रैः स्या॑म सध॒मादः॑ ॥ ४ ॥

(ऋ० ५।२०।१-४)

अर्थ— [९१२] हे (वाजसातम अग्ने) अनन्त अन्न देनेवाले अग्ने! (नः यं रयिं त्वं मन्यसे चित्) हम लोगों द्वारा दिये गये जिस धनको तू स्वीकार करता है, हमारे (श्रवाय्यं गीर्भिः युजं तं देवत्रा पनय) प्रशस्त और स्तुतियोंके साथ उस धनको तू देवताओंको पहुंचा ॥ १ ॥

[९१३] हे (अग्ने) अग्ने! (ये वृद्धाः) जो मनुष्य धनसे समृद्ध होकर भी (ते उग्रस्य शवसः अप न ईरयन्ति) तेरे इस भयंकर बलको देखकर भी नहीं कांपते हैं, वे (अन्यव्रतस्य द्वेषः ह्वरः सश्चिरे) दूसरे उत्तम कर्म करनेवालोंके द्वेष और हिंसासे अपने आपको संयुक्त करते हैं ॥ २ ॥

१ वृद्धाः उग्रस्य शवसः न ईरयन्ति ह्वरः साश्चिरे— जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे डरते नहीं हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

[९१४] हे (अग्ने) अग्ने! (प्रयस्वन्तः) अन्नसे सम्पन्न हम (होतारं दक्षस्य साधनं) देवोंको बुलानेवाले और बलको प्रदान करनेवाले (त्वा वृणीमहे) तुझे चाहते हैं और (यज्ञेषु पूर्व्यं त्वां गिरा हवामहे) यज्ञोंमें सर्व श्रेष्ठ तेरी वाणी द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[९१५] हे (सहसावन् सुक्रतो) बलवान् और बुद्धिसे युक्त अग्ने! (यथा ते ऊतये दिवे दिवे) जिसप्रकार तेरे रक्षणादिकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन हम तैय्यार रहें, तथा (ऋताय राये सधमादः स्याम) धर्मसे प्राप्त होनेवाले धनके लिये हम लोग इकट्ठे होकर आनंदित हों, उसी प्रकार (गोभिः वीरैः सधमादः स्याम, इत्था) गायों और वीर पुत्रोंके साथ सुखसे युक्त होकर निवास करनेवाले हों, इस प्रकारका तू हमें कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! हमारे द्वारा दिए गए जिस उत्तम और स्तुतियोंके साथ हविको तू स्वीकार करता है, उस हविको तू अन्य देवताओंके पास पहुंचा ॥ १ ॥

जो मनुष्य इस अग्निकी कृपासे धन आदिसे समृद्ध होकर भी इस अग्निके क्रोधको देखकर कांपते नहीं, अग्निके क्रोधकी परवाह नहीं करते, वे उत्तम व्रत करनेवाले मनुष्योंके शत्रु होते हैं और वे नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

यह अग्नि बल प्रदान करनेवाला है और यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ है, ऐसे अग्निकी सब अन्न चाहनेवाले स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हम सभी अग्निकी स्तुति करते हुए प्रतिदिन इस अग्निके संरक्षणमें रहें और धर्मयुक्त धनको प्राप्त करके हम सभी संघटित होकर आनन्दका उपभोग करें तथा पशु और पुत्रपौत्रोंसे समृद्ध होकर हम सब आनन्दसे रहें। यह सब अग्निकी उपासनासे ही प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।२१।१-४) सस आत्रेयः। अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः।

९१६ मनुष्वत् त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ १ ॥

९१७ त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥

९१८ त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥

९१९ देवं वो देवयज्यया अग्निमीळीत मर्त्यः।
समिद्धः शुक्र दीदिहि ऋतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥

(ऋ० ५। २१। १-४)

अर्थ—[९१६] हे (अग्ने) अग्ने! हम (त्वा मनुष्वत् नि धीमहि) तुझको मननशील विद्वान्की तरह स्थापित करते हैं, और (मनुष्वत् समिधीमहि) मननशील विद्वान्की ही तरह प्रज्वलित करते हैं। हे (अङ्गिर) प्राणोंके सदृश प्रिय! तू (मनुष्वत् देवयते देवान् यज) मननशील विद्वान्की तरह ही उत्तम गुणोंको चाहनेवालोंको उत्तम गुणोंसे युक्त कर॥१॥

[९१७] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं मानुषे जने सुप्रीतः इध्यसे) तू मननशील मनुष्योंमें प्रसन्न होकर प्रकाशित होता है। हे (सुजात) उत्तम प्रकारसे उत्पन्न अग्ने! (सर्पिः आ सुते स्रुचः त्वा आनुषक् यन्ति) घृतसे भरे हुए चमचे तुझको अनुकूलतासे प्राप्त होते हैं॥ २॥

[९१८] हे (कवे) दूरदर्शिन् अग्ने! (विश्वे देवासः सजोषसः त्वां दूतं अक्रत) सब देवोंने एक मतसे तुझे दूत बनाया है, इसलिये तेरे भक्त (देवं त्वा सपर्यन्तः यज्ञेषु ईळते) दिव्य गुण युक्त तेरी सेवा करते हुये, यज्ञोंमें तेरी स्तुति करते हैं॥ ३॥

[९१९] हे (शुक्र) तेजस्वी अग्ने! (मर्त्यः देवं अग्निं वः देवयज्यया ईळीत) मनुष्य, दिव्यगुण युक्त और सबमें अग्रणी तेरी देवोंको प्रसन्न करनेके लिए स्तुति करते हैं। तू हवि द्वारा (समिद्धः दीदिहि) प्रवृद्ध होकर दीप्त हो। (ऋतस्य योनिं आ असदः) तू यज्ञकी वेदिमें आकर प्रतिष्ठित हो। तथा (ससस्य योनिं आ असदः) प्रशंसनीय इस यज्ञमें आकर प्रतिष्ठित हो॥ ४॥

भावार्थ— मननशील विद्वान् जिस प्रकार अग्निको प्रतिष्ठित करके उसे अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार हम भी अग्निको प्रदीप्त करें और वह अग्नि भी दिव्य गुणोंकी अभिलाषा करनेवाले हमें दिव्य गुणोंसे युक्त करे॥ १॥

मननशील मनुष्यों द्वारा यह अग्नि प्रज्ज्वलित किया जाता है, जब यह अच्छी तरह प्रज्ज्वलित हो जाता है, तब उसमें घीसे भर भर कर स्रुचाएं डाली जाती हैं॥ २॥

हे दूरदर्शी अग्ने! सब देवोंने एक मतसे तुझे देवोंका दूत निश्चित किया है, इसलिये भक्त तेरी उपासना करते हैं ताकि उनकी प्रार्थनाएं तू देवोंके पास पहुंचा॥ ३॥

यह अग्नि देवोंका मुख है, इसलिए देवोंको प्रसन्न करनेके लिए भक्त गण इसी अग्निका सहारा लेते हैं और इसे प्रज्ज्वलित करके इसमें आहुति देते हैं। तब यह यज्ञकी वेदिमें अच्छी प्रकार प्रतिष्ठित होता है॥४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।२२।१-४) विश्वसामा आत्रेयः। अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः।

९२० प्र विश्वसामन्नत्रिव-दर्चा पावकशोचिषे।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥
९२१ न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम्।
प्र यज्ञ एत्वानुष-गद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥
९२२ चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥
९२३ अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य।
तं त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ४ ॥

(ऋ० ५।२२।१-४)

अर्थ--[९२०] हे (विश्वसामन्) विश्व भरके सामके ज्ञाता! (यः अध्वरेषु ईड्यः) जो सब यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य है (होता विशि मन्द्रतमः) देवताओंको बुलानेवाला तथा प्रजाओंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है (पावकशोचिषे अत्रिवत् प्र अर्च) उस पवित्र दीप्तिवाले अग्निका अत्रिके समान पूजन कर ॥ १ ॥

[९२१] हे यजमानो! तुम सब, (जातवेदसं देवं ऋत्विजं अग्निं निदधात) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, तेजस्वी और सब ऋतुओंमें यज्ञ करनेवाले अग्निको संस्थापित करो, जिससे (अद्य देवव्यचस्तमः यज्ञः आनुषक् प्र एतु) आज देवोंके प्रिय यज्ञके साधक रूप हव्यको हम अग्निके लिये अनुकूलतासे प्रदान करें ॥ २ ॥

[९२२] हे अग्ने! (चिकित्विन्मनसं) विज्ञानयुक्त मनवाले (देवं त्वा मर्तासः ऊतये इयानासः) तेजस्वी तुझको हम सब मनुष्य अपनी रक्षाके लिये प्राप्त होते हैं। तथा (वरेण्यस्य ते अवसः अमन्महि) वरण करने योग्य श्रेष्ठ तेरी संरक्षण शक्ति प्राप्त करनेके लिए हम स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[९२३] हे (सहस्य अग्ने) बलके पुत्र अग्ने! तू (अस्य नः इदं वचः चिकिद्धि) इस हमारी प्रार्थनाओंको जान। हे (सुशिप्र दम्पते) सुन्दर हनु और नासिकावाले गृहपति! (तं त्वा अत्रयः स्तोमैः वर्धन्ति) उस तुझको तीन प्रकारके दुःखोंसे रहित जन स्तोत्रोंसे बढाते हैं। और (अत्रयः गीर्भिः शुम्भन्ति) काम क्रोध और लोभ इन तीनों दोषोंसे रहित जन उत्तम वचनोंसे अलंकृत करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अहिंसक यज्ञोंका आधार है, सब प्रजाओंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है, इसलिए वह सब प्रकारसे पूज्य है ॥ १ ॥

यह अग्नि इस संसारमें उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जाननेवाला है, ऋतुके अनुसार उसमें यज्ञ किए जाते हैं, वह देवोंका प्रिय है और यज्ञको सिद्ध करनेवाला है ॥ २ ॥

उत्तम और मननशील बुद्धिसे युक्त यह अग्नि उत्तम संरक्षणकी शक्तिसे युक्त है, इसीलिए इससे वह शक्ति प्राप्त करनेके लिए मनुष्य इसकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हे बलके पुत्र अग्ने! इन हमारी प्रार्थनाओंको तू समझ। (अ-त्रयः) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे रहित मनुष्य तुझे अपने स्तोत्रोंसे बढाते हैं और तुझे उत्तम वचनोंसे शुद्ध करते हैं। उत्तम वचन बोलनेवाला सदा शुद्ध और पवित्र रहता है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।२३।१-४) द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः। अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः।

९२४ अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभि आसा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥

९२५ तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ २ ॥

९२६ विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥

९२७ स हि ष्मा विश्वचर्षणि-रभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ॥ ४ ॥

(ऋ० ५।२३।१-४)

अर्थ—[९२४] हे (अग्ने) अग्ने! (यः आसा वाजेषु विश्वाः चर्षणीः अभि सासहत्) जो मनुष्य स्तोत्रसे युक्त होकर युद्धोंमें सम्पूर्ण शत्रुओंको सब प्रकारसे अभिभूत करता है (द्युम्नस्य प्रासहा सहन्तं रयिं आ भर) उस तेजस्वी जनके लिये प्रकृष्ट बलसे शत्रुओंको पराजित करनेवाले धन प्रदान कर ॥ १ ॥

१ सहन्तं रयिं द्युम्नस्य आ भर— शत्रुको पराजित करनेवाला धन तेजस्वी मनुष्यको मिले।

[९२५] हे (सहस्व अग्ने) बलवान् अग्ने! (त्वं हि सत्यः, अद्भुतः, गोमतः वाजस्य दाता) तू सत्य स्वरूप, अद्भुत तथा गवादि युक्त धनोंका देनेवाला है। ऐसा तू (पृतनासहं रयिं आ भर) शत्रुओंकी सेनाको परास्त करनेवाले ऐश्वर्यको हमें प्रदान कर ॥ २ ॥

[९२६] हे अग्ने! (सजोषसः वृक्तबर्हिषः विश्वे जनासः) समान प्रीतिवाले, आसन बिछानेवाले सब ऋत्विक् गण (हि सद्मसु) निश्चयसे यज्ञगृहमें (होतारं प्रियं त्वा) देवोंके आह्वाता, सबके प्रिय ऐसे तुझसे (पुरु वार्या व्यन्ति) बहुत श्रेष्ठ धनोंकी याचना करते हैं ॥ ३ ॥

[९२७] (सः विश्वचर्षणिः अभिमाति सहः हि ष्म दधे) सब कर्मोंको देखनेवाला वह शत्रुओंके संहार करनेवाले बलको हमें प्रदान करे। हे (शुक्र अग्ने) तेजस्वी अग्ने! तू (नः एषु क्षयेषु रेवत् आ दीदिहि) हमारे इन घरोंमें धनसे सम्पन्न तेज फैला। हे (पावक) पापशोधक! (द्युमत् दीदिहि) तेज और यशसे युक्त तू सर्वत्र प्रकाशित हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो अग्निकी स्तुति करनेके साथ साथ इतना बलशाली है कि युद्धोंमें उसके सभी शत्रु हार जाते हैं उसीके पास सभी तरहके ऐश्वर्य रहते हैं। ऐसा ही वीर ऐश्वर्योंकी रक्षा कर सकता है ॥ १ ॥

हे अग्ने! तू अद्वितीय शक्तिवाला तथा ऐश्वर्योंसे भरपूर है, अतः संघटित होकर रहनेवाले तथा तेरे सत्कार करनेके लिए आसन बिछानेवाले मनुष्य तुझसे अनेक तरहके ऐश्वर्य मांगते हैं, अतः तू उन्हें भरपूर ऐश्वर्य दे ॥ २ ॥

हे अग्ने! तू सर्वव्यापक होनेके कारण सब कर्मोंको देखनेवाला है, तथा तेरे पास बलका भण्डार है, अतः तू हमारे घरोंको ऐश्वर्यसे और बलसे सम्पन्न कर, तथा स्वयं भी प्रकाशित होता रह, अर्थात् हम भी ऐश्वर्य और बलसे युक्त होकर यज्ञ करते रहें ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।२४।१-४) बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा। द्विपदा विराट्।

९२८ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥ १ ॥

९२९ वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ २ ॥

९३० स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ ३ ॥

९३१ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४ ॥

(ऋ० ५।२५।१-९) वसूयव आत्रेयाः। अनुष्टुप्।

९३२ अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः।
रासत् पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥

(ऋ० ५।२४।१-४)

अर्थ— [९२८] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं नः अन्तमः) तू हमारे पास रहकर हमारे लिए (वरूथ्यः त्राता उत शिवः भव) स्तुतिके योग्य, रक्षक और कल्याणकारी हो ॥ १ ॥

[९२९] (वसुः वसुश्रवाः अग्निः) सबको बसानेवाला धन और धान्यसे युक्त अग्नि (अच्छ नक्षि) अच्छी प्रकारसे हमको व्याप्त करे। और (द्युमत्तमं रयिं दाः) अतिशय दीप्तिशील उत्तम धन हमको प्रदान करे ॥ २ ॥

[९३०] हे अग्ने! (सः नः बोधि) वह प्रसिद्ध तू हम लोगोंको जान। हम लोगोंकी (हवं श्रुधि) पुकारको सुन। तथा (समस्मात् अघायतः नः उरुष्य) समस्त पापाचरण करनेवाले दुष्टोंसे हम लोगोंकी रक्षा कर ॥ ३ ॥

[९३१] हे (शोचिष्ठ दीदिवः) अत्यन्त शुद्ध करनेवाले और अपने तेजसे प्रदीप्त होनेवाले अग्ने! (नूनं तं त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे) निश्चयसे उन श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न तुझसे हम लोग सुखकी तथा मित्रताकी प्रार्थना करते हैं ॥४॥

(ऋ० ५।२५।१-९)

[९३२] हे ऋषियो! अपनी (अवसे वः देवं अग्निं अच्छा गासि) रक्षाके लिये तुम दिव्यगुण युक्त अग्निकी अच्छी प्रकारसे स्तुति करो। (सः नः वसुः रासत्) वह अग्नि हमें धन भरपूर देवे। (ऋषूणां पुत्रः ऋतावा द्विषः पर्षति) ऋषियोंके पुत्र अर्थात् ऋषियों द्वारा अरणिमन्थनसे उत्पन्न, सत्यसे युक्त अग्नि हम लोगोंको शत्रुओंसे पार लगावे ॥ १ ॥

भावार्थ— संरक्षण करनेवाले साधनोंसे युक्त यह अग्नि हमारे पास बैठे और हमें सुखकारक हो, वह सर्वव्यापक अग्नि हम पर कृपा करके हमें अत्यन्त तेजस्वी सम्पत्ति प्रदान करे ॥ १-२ ॥

हे अग्ने! तू हमें जान, हमारी पुकार सुन तथा हमें सब पापियोंसे बचा ताकि हम तुझसे सुख और मित्रता प्राप्त कर सकें ॥ ३-४ ॥

हर मनुष्यको अपनी रक्षाके लिए इस तेजस्वी अग्निकी ही स्तुति करनी चाहिए, वही हर तरहका धन देकर सबको बसने योग्य बनाता है। वह ज्ञानपूर्वक अरणिमन्थन करनेसे पैदा होता है, इसलिए वह अत्यधिक बलशाली होनेसे शत्रुओंको पराजित करता हैं ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९३३ स हि स॒त्यो यं पूर्वे॑ चि॒द् दे॒वास॑श्चि॒द् यमी॑धि॒रे ।
होता॑रं म॒न्द्रजि॑ह्व॒मित् सु॑दी॒तिभि॑र्वि॒भाव॑सुम् ॥ २ ॥

९३४ स नो॑ धी॒ती वरि॑ष्ठया॒ श्रेष्ठ॑या च सुम॒त्या ।
अग्ने॑ रा॒यो दि॑दीहि नः सुवृ॒क्तिभि॑र्वरेण्य ॥ ३ ॥

९३५ अ॒ग्निर्दे॒वेषु॑ राजति अ॒ग्निर्मर्ते॑ष्वावि॒शन् ।
अ॒ग्निर्नो॑ ह॒व्यवा॑ह॒नो॒ऽग्निं धी॒भिः सं॑पर्यत ॥ ४ ॥

९३६ अ॒ग्निस्तु॒विश्र॑वस्तमं तु॒विब्र॑ह्माणमु॒त्तमम् ।
अ॒तूर्तं॑ श्राव॒यत्प॑तिं पु॒त्रं द॑दाति दा॒शुषे॑ ॥ ५ ॥

अर्थ— [९३३] (पूर्वे चित्) पूर्ववर्ती महर्षियोंने (होतारं, मन्द्रजिह्वं सुदीतिभिः विभावसुं यं ईधिरे) देवोंके आह्वाता, सुन्दर जिह्वावाले, अत्यन्त तेजवाले, शोभनदीप्तिसे सम्पन्न जिस अग्निको प्रदीप्त किया, तथा (यं देवासः चित्) जिसको देवोंने भी प्रदीप्त किया, (स हि सत्यः इत्) वह अग्नि सत्य संकल्पसे परिपूर्ण है ॥ २ ॥

[९३४] हे (सुवृक्तिभिः वरेण्य अग्ने) स्तोत्रों द्वारा स्तुत तथा वरण करने योग्य अग्ने ! (सः श्रेष्ठया धीती च वरिष्ठया सुमत्या नः रायः दिदीहि) वह तू अपनी अति धारणावाली और अत्यन्त स्वीकार करने योग्य सुन्दर बुद्धिसे हम लोगोंके लिये धनको प्रदान कर ॥ ३ ॥

[९३५] जो (अग्निः देवेषु राजति) अग्नि देवोंके मध्यमें प्रकाशित होता है जो (अग्निः मर्तेषु आविशन्) अग्नि मनुष्योंमें प्रविष्ट होता है, तथा जो (अग्निः नः हव्यवाहनः) अग्नि हमारे यज्ञमें देवताओंके लिये हव्य वहन करनेवाला है । उस (अग्निं धीभिः सपर्यत) अग्निका हे मनुष्यो ! तुम सब अपनी बुद्धियोंसे स्तुतिद्वारा पूजा करो ॥ ४ ॥

[९३६] (अग्निः दाशुषे) अग्नि दाताके लिये, (तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणं उत्तमं अतूर्तं श्रावयत्पतिं) बहुविध अन्नोंसे युक्त, बहुत स्तोत्रोंका कर्ता, अत्यन्त श्रेष्ठ, शत्रुओं द्वारा हिंसित न होनेवाला, अपने उत्तम कर्मोंसे कुलके यशको फैलानेवाला इस प्रकारके गुणोंसे अलंकृत (पुत्रं ददाति) पुत्र देता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस अत्यन्त तेजस्वी अग्निको प्राचीन महर्षियोंने और देवोंने प्रदीप्त किया था। वह अग्नि अविनाशी और सत्य संकल्पोंसे युक्त है । वह जो संकल्प करता है, वह हमेशा श्रेष्ठ और उत्तम होता है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू उत्तम और धारणावाली बुद्धिसे युक्त है, इसीलिए सब तेरी स्तुति करते हैं और तुझे चाहते हैं, अतः तू हमें भी अपनी उत्तम बुद्धिसे युक्त कर एवं धन प्रदान कर । धन प्राप्त करनेसे पूर्व मनुष्यमें उत्तम बुद्धि होनी चाहिए ताकि वह प्राप्त हुए धनका दुरुपयोग न करे ॥ ३ ॥

यह अग्नि देवोंमें भी प्रतिष्ठित है अर्थात् सूर्य, विद्युत् आदि रूपोंमें यह देवोंके बीचमें विद्यमान है, तथा मनुष्योंमें अग्नि ज्ञानी ब्राह्मणके रूपमें है, मनुष्य शरीरमें प्राणाग्नि या आत्माग्निके रूपमें विद्यमान है ॥ ४ ॥

इस अग्निकी कृपासे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह धनवान्, बुद्धिमान्, बलवान् और यशोवान् होता है। जिस माता पिताओंमें यह अग्नि अत्यधिक शक्तिशाली होता है, उनकी सन्तानें इन गुणोंसे युक्त होती हैं ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९३७ अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ६ ॥

९३८ यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयि—स्त्वद् वाजा उदीरते ॥ ७ ॥

९३९ तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥

९४० एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥

अर्थ— [९३७] (अग्निः यः नृभिः, युधा सासाह सत्पतिं ददाति) अग्नि हम लोगोंको उस तरहका, जो अपने परिजनोंका साथ देनेवाला, युद्धके द्वारा शत्रुओंको पराभूत करनेवाला और सत्य प्रतिज्ञ है ऐसा पुत्र देता है। तथा जो (अग्निः जेतारं, अपराजितं, रघुष्यदं अत्यं) अग्नि शत्रुओंको जीतनेवाला, कभी भी पराजित न होनेवाला, द्रुत वेगवाला और निरन्तर चलनेवाला घोडा भी देता है ॥ ६ ॥

[९३८] (यत् वाहिष्ठं तद् अग्नये) जो श्रेष्ठतम स्तोत्र है अग्निके लिये निवेदन किया जाता है। हे (विभावसो) तेजोमय अग्ने ! हम लोगोंको (बृहत् अर्च) बहुत धन प्रदान कर, क्योंकि (त्वत् महिषी रयिः उदीरते) तुझसे ही बडी सम्पत्ति उत्पन्न होती है। और (वाजाः त्वत्) सम्पूर्ण अन्न भी तुझसे ही उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

[९३९] हे अग्ने ! (तव अर्चयः द्युमन्तः) तेरी शिखायें तेजसे युक्त हैं। हे (बृहत्) महान् ! तू (ग्रावा इव उच्यते) शत्रुओंको शिलाके समान चूर्ण करनेमें समर्थ कहा जाता है। (उतो त्मना दिवः) और अपने आप स्वयं द्योतमान होता है। (ते स्वानः तन्यतुः यथा अर्त) तेरा शब्द मेघ गर्जनकी तरह प्रकट होता है ॥ ८ ॥

[९४०] (वसूयवः सहसानं अग्निं ववन्दिम) हम धनकी कामना करनेवाले लोग बलवान् अग्निकी स्तोत्रादिके द्वारा स्तुति करते हैं। (सुक्रतुः सः नः विश्वा द्विषः अति पर्षत् इव नावा) शोभन कर्मवाला वह अग्नि हम लोगोंको सम्पूर्ण शत्रुओंसे उसी प्रकार पार लगावे, जिस प्रकार नौकाके द्वारा नदी पार की जाती है ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस अग्निकी प्रसन्नतासे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह सब मनुष्योंके साथ संगठित होकर रहनेवाला, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला और सत्यके मार्ग पर चलनेवाला होता है। उसकी प्रसन्नतासे उत्तम उत्तम पशु भी प्राप्त होते हैं ॥६॥

इसी अग्निसे महान् धन और बल उत्पन्न होते हैं, और यह धन और बल वह अपने उपासकोंको देता है, इसलिए सारे श्रेष्ठ स्तोत्र उसीके लिए किए जाते हैं ॥ ७ ॥

जब इस अग्निकी ज्वालायें तेजसे युक्त होती हैं, तब शत्रुओंको उसी प्रकार पीस देती हैं, जिस प्रकार पत्थर पदार्थोंको, और तब वह अग्नि स्वयं प्रकाशमान् होता है उसका शब्द मेघकी गर्जनाके समान भयंकर होता है ॥ ८ ॥

बल और धनकी कामना करनेवाले लोग इस अग्निकी स्तुति करें, प्रसन्न होकर वह उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि अपने उपासकोंको शत्रुओंकी पीडासे दूर करे ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ० ५।२६।१-८) गायत्री।

९४१ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥
९४२ तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥
९४३ वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥
९४४ अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये। होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥
९४५ यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥
९४६ समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥

(ऋ० ५।२६।१-८)

अर्थ— [९४१] हे (पावक देव अग्ने) पवित्र करनेवाले और दिव्य गुणोंसे युक्त अग्ने! तू अपनी (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया देवान् आ वक्षि) दीप्तिसे और देवोंको प्रहृष्ट करनेवाली जिह्वासे देवोंको यज्ञमें ले आ (च यक्षि) और उनको तृप्त कर ॥ १ ॥

[९४२] हे (घृतस्नो चित्रभानो) घृतसे प्रदीप्त होनेवाले आश्चर्यकारक रश्मिवाले अग्ने! (स्वर्दृशं तं त्वा ईमहे) सर्व द्रष्टा उस तुझसे हम सब अपने सुखके लिये याचना करते हैं। तू (वीतये देवान् आ वह) हव्य भक्षण-के लिये देवोंको यहां ले आ ॥ २ ॥

[९४३] हे (कवे अग्ने) दूरदर्शी अग्ने! हम (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तं त्वा समिधीमहि) हव्यका भक्षण करनेवाले दीप्तिमान् और महान् गुणोंसे युक्त तुझको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

[९४४] हे (अग्ने) अग्ने! (विश्वेभिः, देवेभिः हव्यदातये आ गहि) सम्पूर्ण देवोंके साथ तू हव्य दाताके लिये यज्ञमें उपस्थित हो हम सब (होतारं त्वा वृणीमहे) देवोंको बुलाकर लानेवाले तुझको स्वीकार करते हैं चाहते हैं ॥ ४ ॥

[९४५] हे (अग्ने) अग्ने! (सुन्वते यजमानाय सुवीर्यं आ वह) सोम निचोडनेवाले यजमानके लिये तू श्रेष्ठ पराक्रमको प्रदान कर और (दैवैः बर्हिषि आ सत्सि) देवोंके साथ यज्ञमें कुश पर आकर बैठ ॥ ५ ॥

[९४६] हे (सहस्रजित् अग्ने) सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाले अग्ने! तू (समिधानः उक्थ्यः देवानां दूतः धर्माणि पुष्यसि) हव्य द्वारा प्रदीप्त, प्रशंसनीय देवोंका दूत होकर हम लोगोंके सभी धार्मिक कार्योंको उत्तम प्रकारसे पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! तेरी ज्वालाएं विलक्षण हैं, इसीलिए तेरी ज्वालायें आनन्द देनेवाली हैं, हम तुझसे सुखकी कामना करते हैं तू हमारे इस जीवन यज्ञमें सभी देवोंको स्थिर रख ताकि हम चिरकाल तक सुखका उपभोग कर सकें ॥ १-२ ॥

हे अग्ने! तू उत्तम कर्म करनेवाला है अतः इस हिंसासे रहित यज्ञमें भी सभी देवताओंके साथ आ, हम तुझे बुलाते हैं और हवि भी देते हैं ॥ ३-४ ॥

हे हजारों शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले अग्ने! तू प्रदीप्त होकर हमारे सभी धार्मिक कार्योंको पूर्ण करता है, इसलिए हमारे यज्ञोंमें आ और सब देवोंके साथ हमारे द्वारा दी गई आहुतिका भक्षण कर और हमें बल प्रदान कर ॥ ५-६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd No. G. 71

' संसारके पुस्तकालयमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है '। संसारका ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो ऋग्वेदमें न हो। दार्शनिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांसारिक आदि सभी विषयोंका समावेश ऋग्वेदमें है। अतः—

यदि आप जानना चाहते हैं

कि

(१) ऋग्वैदिक दार्शनिकता क्या है ?

(२) ऋग्वैदिक समाजशास्त्र क्या है ?

(३) ऋग्वैदिक भौतिकशास्त्र कैसा है ?

(४) ऋग्वैदिक अध्यात्मविद्या क्या है ?

(५) ऋग्वेदका सारांश क्या है ?

तो अवश्य ग्राहक बनिये—

म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर कृत

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(चार भागोंमें)

प्रकाशन कार्य आरंभ हो गया है। मंत्र, अर्थ, भावार्थ तथा हर मण्डलके अन्तमें उस मंडलका सारांश एवं कठिनस्थलोंका स्पष्टीकरण सभी कुछ पठनीय होगा। साइज– डबल क्राऊन ८ पेजी, सुन्दर कागज, पृष्ठ संख्या २५०० से ज्यादा, मूल्य मात्र २०) रु. प्रत्येक भाग, पर—

(१) जो पेशगी धन भेज कर इस ग्रंथके ग्राहक होंगे, उन्हें केवल ६०) में चारों भाग मिल सकेंगे।

(२) जो ग्राहक चारों भाग एक साथ खरीदेंगे, उन्हें इस ग्रंथ पर २०% कमीशन दिया जाएगा।

(३) जो इस ग्रंथके कम से कम ७ ग्राहक बनायेंगे उन्हें लेखकके हस्ताक्षरके साथ चारों भाग मुफ्त भेंटस्वरूप दिए जाएंगे।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—
स्वाध्याय-मण्डल पारडी,
पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसार]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो. 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu